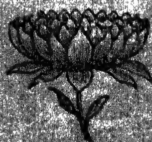
जीवन-निर्वाह।



लेखक—

सूरजभानु वकील।

जीवन-निर्वाह ।

सुख-शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करनेके लिए,
सच्चे, स्वाधीन, युक्तियुक्त और निष्पक्ष
विचारोंका संग्रह ।]



लेखक,

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकील,

नकुड, जि० सहारनपुर ।



प्रकाशक-

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, बम्बई ।



वैशाख १९७७ वि० ।

प्रथमावृत्ति । } अप्रैल, १९२० ई० { मूल्य एक रुपया ।

जिल्दसहितका डेढ रुपया ।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई ।



मुद्रक—
अनंत आत्माराम मोरमकर
श्रीलक्ष्मी-नारायण प्रेस
४०२ ठाकुरद्वार बंबई नं. २

विषय-सूची ।



पृष्ठसंख्या

जीवन-निर्वाह ।

१ सभ्यताका प्रारम्भ ।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि अनेक प्रकारके जीव संसारमें भरे पड़े हैं,—ये सब खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते, मिलते-जुलते, लड़ते-झगड़ते संतान पैदा करते और उनका पालन-पोषण करते ह । इनमसे हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस आदि कई जीवधारी डीलडौलमें मनुष्यसे बहुत बड़े हैं, और शेर, चीता आदि कई जीवधारी उससे ताकतमें भी अधिक हैं; परन्तु नई नई बातोंके निकालनेकी बुद्धि और आपसमें बातचीत करनेकी शक्ति ये दो बातें मनुष्यमें ऐसी हैं जो अन्य जीवोंमें नहीं पाई जातीं । इन्हीं दो बातोंके कारण मनुष्यका बड़प्पन और मनुष्यत्व जाहिर होता है । मनुष्यके सिवा जितने जीव हैं वे सब अपने अपने स्वभावके अनुसार सदासे एक ही प्रकारका जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं । लाखों करोड़ों वर्ष बीत जाने पर भी उन्होंने अभीतक अपने जीवन–निर्वाहकी विधिमें जरा भी उन्नति या अदल–बदल नहीं की, और न भविष्यमें कुछ अदल-बदल करनेकी आशा ही है । यह सच है कि इनमेंसे कई जीवधारी बड़ी बड़ी होशयारी और कारीगरीका काम करते हैं कि जिसे देखकर मनुष्य-बुद्धि भी आश्चर्य्यचकित हो जाती है; जैसे–मकड़ीका जाला बुनना और शहदकी मक्खियोंका छत्ता बनाना आदि । लेकिन मकड़ी जैसा जाला आज पूरती है वैसा ही वह सदासे पूरती आ रही है, इसीप्रकार मक्खियाँ भी जैसा छत्ता आज बनाती हैं वे सदासे वैसा ही

बनाती आ रही हैं। यही कारण है कि किसी मकड़ीके पूरे हुए एक जालेमें यदि छह कौने हैं तो उस जातिकी सभी मकड़ियोंके जालेमें छह कौने ही होंगे। यह कभी नहीं हो सकता है कि एक ही जातिकी मकड़ियोंमें कोई तो छह कौनेका जाला पूरे और कोई पाँच या सातका। एक जातिकी सभी मकड़ियोंके जालेमें एक ही प्रकारके कौने होंगे। यही बात मक्खियोंमें भी पाई जाती है। यदि उनके एक छत्तेकी कोठरियाँ पाँच पाँच कौनेकी हैं तो उस जातिकी मक्खियोंके सभी छत्तोंकी कोठरियाँ सर्वत्र पाँच ही कौनोंकी मिलेंगी, इसमें किसी प्रकारकी कमी वेशी न कभी उन्होंने की है और न वे कर सकती हैं। इस लिए बुद्धिमानोंका कथन है कि मकड़ीका जाला, मक्खियोंका छत्ता और वया पक्षीका घोंसला आदि जितने बड़े बड़े चतुराईके कार्य्य इन जीवोंमें दिखाई देते हैं उनको वे अपने विचार-बलके द्वारा नहीं, किन्तु अपनी अपनी प्रकृति या स्वभावके अनुसार ही करते हैं। यही कारण है कि वे उक्त कार्य्य बिना देखे और बिना सीखे ही कर लेते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी वया पक्षीका अंडा किसी गुप्त स्थानमें रखकर किसी अन्य जातीय पक्षी द्वारा सेया (पोषित किया) जाय, तो उससे निकला हुआ वयाका बच्चा भी बड़ा होकर वैसा ही घोंसला बनावेगा जैसा कि अन्य वये बनाते हैं। इसी लिए विद्वानोंने इन जीवोंकी इस चतुराईको विचार-शक्ति-जन्य नहीं, किन्तु पशु-प्रकृतिजन्य Instinct of Brutes ही बतलाया है।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ये जीव कोई नवीन बात सीख ही नहीं सकते, बल्कि इसका मतलब केवल इतना ही है कि वे अपनी बुद्धिसे कोई नवीन बात पैदा नहीं कर सकते हैं। विचारबुद्धिकी हीनताके कारण ही ये जीव अपने खाने-पीने आदिके लिए किसी प्रकारकी कोई वस्तु नहीं बनाते हैं और न उसके लिए किसी प्रकारकी मिहनत ही करते हैं। उनको तो जो कुछ बनी बनाई वस्तु

मिल जाती है उसी पर वे अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार जीवन-निर्वाह किया करते हैं। परन्तु मनुष्यने अपने बुद्धिबलसे अर्थात् नई नई बातोंके निकालनेकी शक्तिसे अपने आरामके वास्ते अनेक अद्भुत और उपयोगी बातें निकाल ली हैं,और वह आगेको और और नवीन नवीन तर्कीबें निकालता ही जा रहा है। देखो, पशुगण सदासे कच्चे फल मूल, कच्चा मांस और कच्चा घास-पात ही खाते हैं, जिसके पचानेके लिए उन्हें अपनी जठराग्निसे बहुत काम लेना पड़ता है, इतने पर भी वे उसे बहुत ही कम पचा सकते हैं, जिससे बहुत भोजन करने पर भी उन्हें बहुत ही थोड़ा रस मिलता है और इसी लिए इन जीवोंको दिन भर खाने और मल-मूत्र त्यागनेके सिवा दूसरा काम ही नहीं रहता है। परन्तु मनुष्यने पहले तो यह बात खोज निकाली कि खानेकी वस्तुको अग्निमें पका लेनेसे पेटकी पाचन-शक्तिको बहुत कम काम करना पड़ता है, और थोड़ा खानेसे ही इतना रस निकल आता है जो शरीरके पोषणके लिए यथेष्ट हो जाता है। इसके बाद मनुष्यने यह भी ज्ञात किया कि भोजनके साथ थोड़ासा नमक खालेनेसे खाना और भी आसानीके साथ पच जाता है। इन बातोंके ज्ञानसे उसका पशुओंके समान दिन भर खानेका काम छूट गया और उसको अपने सुखकी अन्य सामग्री जुटानेके लिए बहुत अवकाश मिल गया।

इसी प्रकार धीरे धीरे मनुष्यने मिट्टीके बर्तन बनाकर उनको आगमें पकाना और फिर उनमें अपना भोजन बनाना सीखा। फिर उसने पत्थरोंको तोड़-फोड़कर तथा खोद या घिसकर भी अनेक प्रकारके बर्तन, औजार तथा हथियार बनाना प्रारंभ किया। इसी प्रकार वह काँसा, ताँबा आदि नरम धातुओंको आगमें गलाकर उनको साँचेमें ढालना या ठोक पीटकर अनेक प्रकारकी उपयोगी वस्तुएँ बनाना सीख गया। अन्तमें लोहे जैसे कड़े पदार्थको भी काममें

लानेकी विधि उसे मालूम हो गई। इसी प्रकार सरदी गरमीसे अपना शरीर बचानेके लिए पहले तो मनुष्यने हिरण आदि पशुओंका चमड़ा ओढ़ा, फिर वृक्षोंके पत्ते और छाल लपेटी, फिर वृक्षोंकी छालसे मोटा-झोटा बुनना शुरू किया, फिर वह पशुओंके लम्बे लम्बे बालोंको लेकर कम्बल बुनने लगा, वृक्षोंकी छालके रेशोंसे डोरी बटकर उनसे टाट बुनने लगा और इस प्रकार अन्तमें वह रूईका कपड़ा भी बनाने लग गया। इसी प्रकार वर्षा और धूप आदिसे बचनेके लिए पहले तो उसने वृक्षोंपर घास-फूस डालकर छप्पर सा बनाया, फिर वृक्षोंकी पतली पतली छड़ियों और बाँसोंको बाँधकर उनका एक छप्पर बना कर वृक्षोंपर डाला, फिर छप्परके ही दो पल्ले बनाकर और उनको जमीन पर तान कर घरसा बनाया, फिर मिट्टीकी दीवालें खड़ी करके उनपर छप्पर डालना शुरू किया, इसके बाद वह फूसकी जगह मिट्टीकी खपरैल आगमें पकाकर उपयोगमें लाने और ईंटें बनाकर ईंट तथा पत्थरकी दीवालें बनाने लगा। कुछ समयके उपरान्त जब उसने इस काममें और तरक्की की तब वह छप्परके स्थानमें कड़ियाँ डालकर कच्ची तथा पक्की छतें बनाने लगा।

इस प्रकार मनुष्यने केवल कारीगरीहीमें उन्नति नहीं की, वरन् प्रकृतिसे पैदा होनेवाली वस्तुओंमेंसे जो जो वस्तुएँ उसने अपने कामकी समझीं, उन सबको भी वह उत्पन्न करने लगा। कई जगहोंसे उनके बीज लाकर और उनके पैदा होनेका मौसम आदि जाँचकर उनका बोना शुरू किया। फिर उनकी पैदावार बढ़ानेके लिए जमीनके झाड़ वगैरह साफ करके और जमीनको हल आदिसे पोली तथा फुस-फुसी करके उसमें खाद डालना शुरू किया। फिर जरूरतके समय कुए तालाब आदिसे पानी सींचकर और खेतमें उत्पन्न होनेवाले घास-फूस आदिको नींदकर तथा जंगली जानवरों और पक्षियोंसे उसकी पूरी पूरी रक्षा करके वह प्रकृतिसे कई गुनी

फसल पैदा करने लगा। फिर उसने पैदा किये हुए अनाजको बहुत समयतक सुरक्षित रखनेका तरीका निकाल कर अपनी जरूरतोंको बहुत कुछ पूरा करना सीख लिया।

इसी रीतिसे मनुष्यने अनेक प्रकारकी ओषधियाँ ढूंढ़ निकालीं कि जिनके द्वारा वह अपनी सब प्रकारकी बीमारियोंसे रक्षा करने लगा। जंगलके अनेक जानवरोंको पकड़कर उससे सवारी, बारबरदारी और खेती आदिका काम लेने लगा और जिन जानवरोंका दूध फायदेमंद मालूम हुआ उनका दूध पीने लगा। फिर दूधसे खीर आदि अनेक प्रकारके भोजन बनाना और उससे दही जमाना तथा घी निकालना भी सीख गया। धीरे धीरे घीसे वह अनेक प्रकारके सुस्वादु और पौष्टिक भोजन बनाने लग गया।

मनुष्यके ये सब कार्य्य बढ़ते बढ़ते इतने ज्यादा बढ़ गये कि एक आदमीके लिए आप ही अपनी सब जरूरतोंको पूरा कर लेना असम्भव हो गया; परन्तु मनुष्यमें नवीन बातें खोज निकालनेका बुद्धिके सिवा जानवरोंसे एक और विशेषता यह है कि वह बातचीत द्वारा अपने मनके भाव दूसरों पर व्यक्त कर सकता है। वह अपने मनकी बात दूसरोंसे कह सकता है और दूसरोंके दिलकी बात सुन सकता है। इस आपसकी बातचीतके द्वारा मनुष्यने अपने आरामके लिए अनेक बातोंका प्रबन्ध कर लिया। उसने अपनेसे बहुत बलसंपन्न पशुओंतकको अपने वशमें कर लिया। क्योंकि जो बात एकको सूझती, वह अपनी बात दूसरोंको सुनाता रहा और इस प्रकार सभी लोगोंकी खोज और सभी मनुष्योंके विचार सब लोगोंको मालूम होते गये। इस प्रकार दिन पर दिन उसके ज्ञानकी वृद्धि होती गई और वह बड़े बड़े कठिन और अद्भुत कार्य्य करने लगा। सच तो यह है कि मनुष्यमें चाहे जितनी बुद्धि क्यों न होती—वह नवीन नवीन बातोंके निकालनेमें कितना ही कुशल क्यों न होता, परन्तु यदि उसमें आपसमें

बातचीत करने और अपने विचार दूसरों पर प्रकट करनेकी शक्ति न होती तो वह कुछ भी उन्नति न कर सकता और अन्य प्राणियोंके ही समान निम्नदशामें पड़ा रहता। इस वचनशक्तिकी बदौलत उसने अपने आरामकी नई नई वस्तुएँ बना लीं और उनके बनते रहनेका भी उत्तम प्रबन्ध कर लिया; क्यों कि जब मनुष्यके आवश्यक पदार्थोंकी संख्या इतनी अधिक बढ़ गई कि अपने उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंको जुटाना और उन सबको स्वतः बनाना उसके लिए असम्भव हो गया, तब उसने पृथक् पृथक् मनुष्योंको पृथक् पृथक् काम हाथमें लेने और उस कार्य्यमें पूर्ण दक्षता प्राप्त करनेकी विधि निकाली। इस प्रकार खास खास आदमी खास खास कामोंमें बहुत होशयार होने लगे और वे अनेक प्रकारके कामोंको छोड़कर एक ही प्रकारका काम करने लगे। जब उनको अन्य चीजोंकी जरूरत पड़ी तब वे अपनी बनाई हुई चीजोंका दूसरोंकी बनाई हुई चीजोंसे बदला करने लगे या अपनी किसी कारीगरी अथवा चतुराईके बदले दूसरोंसे कारीगरी या चतुराईका काम कराने लगे। इसी समयसे लुहार बढ़ई, जुलाहा, कुम्हार, राज, पत्थर तराशनेवाले तथा खेती-करनेवाले कृषकों आदिका अलग अलग पेशा हो गया, और ऐसा होनेसे मनुष्यकी हजारों जरूरतकी चीजें धड़ाधड़ तैयार होने लगीं। इस प्रकार धीरे धीरे मनुष्यके रहन-सहन और जीवन-निर्वाहमें बहुत उन्नति हो गई।

इस उत्तम प्रबन्धका यह फल हुआ कि दुनियाका कोई भी आदमी जो कुछ काम बनाता उसका लाभ दुनिया भरके लागोंको होने लगा और होते होते इस महान् सुविधाको लोगोंने यहाँ तक अपनाया कि दुनिया भरकी बनी हुई चीजोंको लिये बिना, केवल अपनी ही बनाई हुई चीजों पर जीवन-निर्वाह करना बिलकुल ही असम्भव हो गया। उदाहरणस्वरूप, अगर कोई आदमी इस बातकी प्रतिज्ञा करे कि मैं

दूसरोंकी बनाई हुई चीजोंको उपयोगमें न लाऊँगा और केवल अपनी ही बनाई हुई चीजों पर गुज़ारा करूँगा, तो उसको सबसे पहले पेट भरनेके लिए अनाजकी ज़रूरत पड़ेगी और उसकी प्राप्तिके लिए उसे खेती करनी पड़ेगी। खेती करनेके लिए हल और कई तरहके औजारोंकी जरूरत पड़ेगी कि जिसके लिए उसे लुहार और बढ़ईका काम सीखना होगा। यही नहीं, लोहेकी खानिका पता लगाकर उसे लोहा लाना होगा और उस लोहेसे बढ़ई तथा लुहारके औजार बना कर फिर उनके द्वारा काश्तकारीके औजार—हल, बखर, कुसिया, पाँस आदि- बनाने होंगे। इस प्रकार अनेक कठिनाइयोंके पश्चात् अनाज उत्पन्न कर लेने पर भी आटा पीसनेके लिए चक्कीकी ज़रूरत पड़ेगी और उसके बनानेके लिए उसे पत्थर गढ़नेका काम सीखना पड़ेगा। रसोईके बर्त्तनोंके लिए तॉंबे और पीतलकी खानियोंसे तॉंबा पीतल लाना तथा ठठेरेका काम सीखना होगा, या कुम्हारका काम सीखकर मिट्टीके बर्तन बनाने पड़ेंगे। अब नमकके बिना भी काम न चलेगा, अतएव नमककी खानि पर जाकर नमक लाना होगा, तब कहीं उसे रोटी मयस्सर होगी। परन्तु ये सब काम एक आदमी अपनी सारी उमरमें भी पूरे नहीं कर सकता। मतलब यह कि दुनियाकी बनाई हुई चीजोंको काममें लाये बिना कोई आदमी अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। ऊपर केवल रोटी बनानेकी कठिनाइयाँ ही लिखी गई हैं, परन्तु उसे रोटीके सिवा और भी कई प्रकारकी वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है, जिनको वह दूसरोंकी सहायताके बिना अपने आप नहीं बना सकता। मान लीजिए कि उसे कपड़ेकी आवश्यकता है, तो उसके लिए पहले उसे कपास बोना पड़ेगा, फिर जुलाहेका काम सीखकर कपड़ा बुनना होगा और तब दर्जीका काम सीखकर उसे सीना होगा। परन्तु सीनेके लिए पहले उसे सुई और कैंची बनानी होगी। इसी प्रकार तेलके लिए अलसी, तिली, सरसों आदिके

बीज बोने पड़ेंगे, फिर उनसे तेल निकालनेके लिए कोल्हू बनाना होगा तब कहीं तेल निकाला जा सकेगा और रातको चिराग जलाना नसीब होगा। ऐसे ही मकान बनानेके लिए भी उसे कई प्रकारकी कारीगरीका काम सीखना होगा और अनेक वस्तुएँ जुटानी पड़ेंगीं तब कहीं मकान बन सकेगा। इससे साफ़ जाहिर होता है कि एक मामूली आदमीकी जरूरतका सामान भी अनेक लोगों और अनेक धन्धेवालोंकी सहायताके बिना न तो पूरा जुट ही सकता है और न उसके बिना वह अपना जीवन-निर्वाह ही कर सकता है।

ऐसी स्थितिमें प्रत्येक मनुष्यको यह समझ लेना चाहिए और ऐसा समझना बिलकुल सही भी है कि दुनिया भरके आदमी जो जो काम कर रहे हैं वे सब काम मेरे ही भले या बुरेके वास्ते हो रहे हैं; अर्थात् दुनिया भरके आदमी जितने अच्छे अच्छे काम करेंगे उनसे मुझे फायदा पहुँचेगा और जितने बुरे बुरे काम करेंगे, उनसे नुकसान पहुँचेगा। अभी प्रत्यक्ष ही देख लीजिए कि अँगरेजों और जर्मनोंकी जो लड़ाई हमसे हजारों कोसकी दूरी पर हो रही थी उससे हम लोगोंको कितना नुकसान पहुँचा? सब चीजोंमें आग लग गई, तोपोंमें रूईका खर्च बढ़ जानेसे हमारे देशमें रूई इतनी मँहगी हो गई कि वह घीके भाव भी न मिली और इसका दुःख सबको उठाना पड़ा। इसी प्रकार अगर यूरोप, अमेरिका आदि दूर देशोंमें अनाज कम पैदा हो तो अपने देशमें चाहे कितनी ही पैदावारी क्यों न हो, परन्तु अनाज अवश्य मँहगा हो जायगा और अकालके लक्षण दिखाई देने लगेंगे। यही कारण है कि अभी जर्मनी, फ्रान्स, आस्ट्रिया, इग्लैण्ड आदि अनेक देशोंके महायुद्धमें लिप्त रहने, तथा वहाँ सब प्रकारकी वस्तुओंका बनना और जहाजोंका आना जाना बंद हो जानेसे हम लोगोंको कई चीजें दुष्प्राप्य हो गई थीं। कहनेका अभिप्राय यह है कि अब मनुष्यका निर्वाह तभी हो सकता है

जब कि दुनिया भरके सभी आदमी पूरी कोशिशके साथ सभी जरूरतकी चीजें बनाते रहें और किसीके भी काममें कोई बाधा खड़ी न हो। क्यों कि इस समय सारी दुनियाका व्यावहारिक सम्बन्ध इतना घनिष्ट हो गया है कि यदि एक आदमीके काममें भी कुछ बाधा आ जाती है तो उसका फल दुनियाके सारे आदमियोंको भोगना पड़ता है।

ऐसी अवस्थामें अपनी सुखसमृद्धिके लिए प्रत्येक मनुष्यका यह कर्त्तव्य हो गया है कि वह संसारकी समग्र मानव जातिकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करे, संसारमें सुख-शान्ति बढ़ावे और अनेक प्रकारकी कलाकुशलता सीखकर मनुष्योंके आरामकी अच्छी अच्छी चीजें निर्माण करे। इसी बातको पूर्ण करनेके लिए कई मनुष्योंने टोलियाँ बनाकर एक साथ रहना प्रारंभ किया और इस प्रकार वे एक दूसरेकी सहायता और रक्षा करने लगे। इसी प्रकार होते होते ग्राम और नगर बस गये और प्रत्येक ग्राम या नगर निवासियोंने अपनेमेंसे किसी एकको अधिक योग्य समझकर अपना सर्दार बना लिया। ये सर्दार आपसकी अनीति तथा अत्याचारोंको रोकने लगे और हरप्रकारसे उनकी रक्षा करने लगे। उनमें किसी तरहका झगड़ा या मनमुटाव न हो इस लिए उन्होंने जमीनकी सीमा निर्धारित की और मकानों, खेतों तथा अन्य सब प्रकारकी वस्तुओंके लिए भी नियम बाँध दिये। इसके सिवा कौन वस्तुपर किसका अधिकार होना चाहिए, एक मनुष्यका दूसरेपर कितना अधिकार है और वह अपने अधिकारोंको किस तरह काममें ला सकता है, स्त्रीका पुरुषके प्रति और पुरुषका स्त्रीके प्रति क्या सम्बन्ध है, इत्यादि सभी प्रकारके नियम बनाये गये और इस प्रकार मनुष्योंमें परस्पर प्रेम और सहकारिताकी वृद्धि हुई।

यह सब तो हो गया, परन्तु अभी तक एक दिक्कत बनी ही रही। किसी जुलाहेको मिट्टीके बरतनकी जरूरत हुई, इसलिए वह कपड़ेका

थान लेकर कुम्हारके पास गया, परन्तु उस समय उसे कपड़ेकी जरूरत न थी। उसने कह दिया कि भाई, मुझे अनाजकी जरूरत है, आप अनाज लाकर दें तो मैं उसके बदले अपने मिट्टीके बर्तन दे सकता हूँ--कपड़ेके बदले नहीं। तब बेचारे जुलाहेको अनाजवालेके पास जाना पड़ा और उससे अनाज लाकर कुम्हारको देना पड़ा, तब कहीं उसे मिट्टीके बर्तन मिले। यदि उस समय अनाजवालेको भी कपड़ेकी जरूरत न होती तो जुलाहेको अपने कपड़ेके बदलेमें वह चीज अनाजवालेको लाकर देनी पड़ती, तब कहीं काम बनता। इस प्रकार प्रत्येक जरूरतको पूर्ण करनेके लिए लोगोंको बहुत भटकना पड़ता था और सबको बहुत दिक्कत उठानी पड़ती थी। अत एव इस दिक्कतसे बचनेके लिए मनुष्योंने एक ऐसी वस्तु नियत कर दी कि जिसके बदले सभी चीजें मिलने लगीं। पहले तो उन्होंने यह काम अनाजसे लिया; परन्तु अनाज बहुत दिनोंतक ठहर नहीं सकता है, इस कारण जिनको बहुत दिनोंतक अन्य किसी वस्तुकी अवश्यकता नहीं पड़ती थी उनके पासका अनाज सड़ या घुनकर खराब हो जाया करता था। इस असुविधाके कारण उन्होंने अनाजकी जगह धातुके टुकड़ोंके द्वारा सब चीजोंका विनिमय या अदलाबदला करना प्रारंभ किया। फिर इस कार्य्यमें उन्नति होते होते राजाओंने अपने अपने नामके ताँबे, चाँदी, सोने आदिके सिक्के जारी किये। इन सिक्कोंके द्वारा सबको सब प्रकारकी चीजें मिलना सुलभ हो गया, इतर मनुष्योंकी बनाई हुई चीजें यथेच्छ उपयोगमें लाई जाने लगी और इस प्रकार मनुष्यकी सभ्यतामें बहुत उन्नति हुई।

२ मनुष्यका मनुष्यत्व।

मनुष्य जातिका पशुजीवनसे उन्नति करते करते मनुष्यत्व प्राप्त करनेका पूर्वोक्त वर्णन मालूम हो जानेपर यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि मनुष्योंको अपना मनुष्यत्व कायम रखने और आगेको उसे अधिकाधिक उन्नत करनेके लिए कौन कौनसे कर्त्तव्य पालन करने चाहिए। क्योंकि जिन सब बातोंकी बदौलत मनुष्यको अपने जीवन-निर्वाहकी अनेक उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होने लगीं, तथा जिनकी बदौलत उसका जीवन पशुजीवनसे सर्वथा भिन्न होकर अत्यन्त सुखमय तथा परम श्रेष्ठ बन गया, उन सब बातोंकी रक्षा करना और उनको उन्नत बनाना मनुष्य-जीवनका मुख्य कर्त्तव्य है—और उनसे ही उसके मनुष्यत्वकी रक्षा हो सकती है। उक्त बातोंको हम तीन श्रेणियोंमें विभक्त करते हैं–(१) **विचारशक्ति**—जिसके द्वारा मनुष्य अपनी उन्नति और सुखशान्तिके बढ़ानेवाले नवीन उपायोंको खोजता और प्राचीन असुविधाजनक तरीकोंको छोड़ता जाता है। (२) **वचनशक्ति**—जिसके द्वारा बालकों तथा नवयुवकोंको अपनेसे बडे तथा अनुभवी पुरुषोंकी जानी बूझी हुई बातें मालूम होती रहती हैं; और आगे चलकर जब ये ही बालक तथा नवयुवक सयाने होते हैं या पितृपदको पाते हैं तब वे अपने पूर्वजोंकी सुनी हुई और अपनी बुद्धि तथा अनुभवसे प्राप्त की हुई बातोंको अपने बच्चोंको सुनाते या सिखाते हैं। इस प्रकार इस बातचीत करनेकी शक्तिकी बदौलत मनुष्य उन सब लोगोंकी खोजी हुई बातोंको जानता रहता है कि जो उससे सैकड़ों-हजारों पीढ़ी पहले उत्पन्न हुए थे। नवीन लोग प्राचीन लोगोंके अनुभवसे जानी हुई बातोंमें अपनी बुद्धिको लड़ाकर कुछ

और आगे सरकते हैं और इस तरह उनसे भी बढ़ियाँ बातें खोज निकालते हैं। इसके सिवा इस वचनशक्तिकी बदौलत मनुष्य अपने समकालीन लोगोंसे भी बातचीत करता है और इस प्रकार नये पुराने सभी मनुष्योंके अनुभवको इकट्ठा करके वह बहुत बड़ा ज्ञानी बनता चला जाता है। यदि मनुष्यमें बातचीत करनेकी शक्ति न होती तो वह न तो उन लोगोंके ही अनुभवोंको जान सकता जो उससे पहले हो गये हैं, और न वह अपने समकालीन मनुष्योंके अनुभवोंको ही जान सकता। ऐसी अवस्थामें उसकी बुद्धिको बाहरसे कुछ भी सहायता न मिलती और वह जरा भी उन्नति न कर सकता, अपनी एक ही दशामें उसी तरह पड़ा रहता जिस तरह कि सब पशुपक्षी पड़े हुए हैं। परन्तु इस वचनशक्तिकी बदौलत उसे नवीन तथा प्राचीन सभी लोगोंका ज्ञान-भंडार मिलता रहता है और इसी लिए वह बहुत शीघ्रताके साथ आगे बढ़ता जाता है। इसी वचनशक्तिकी बदौलत वह अपनी बनाई हुई वस्तुओंसे दूसरोंकी बनाई हुई वस्तुओंका परिवर्त्तन करता, दूसरोंकी रक्षा और सहायता करता तथा दूसरोंसे अपनी रक्षा या सहायता कराता और अपने मनोगत भाव दूसरोंपर प्रकट करता तथा दूसरोंके भाव आप जानता है। (३) **पारस्परिक सहायता**—अर्थात् आपसमें मिल जुलकर रहना, एक दूसरेकी चीजोंसे बदला करना, एक दूसरेके धन जन और अधिकारोंकी रक्षा करना और सहायता देना। अगर ये बातें न हों तो एक मनुष्य अपनी अकेली बुद्धि और वचनशक्तिसे कुछ भी नहीं कर सकेगा, बल्कि इनके बिना उसका जीवन-निर्वाह ही कठिन और रुद्ध हो जायगा।

इस प्रकार ये तीन बातें ऐसी हैं जिन्होंने मनुष्यको मनुष्य बनाया है। इस लिए उसका मनुष्यत्व और परम कर्त्तव्य यही है कि वह सदैव इन तीनों बातोंमें उन्नति करता रहे, उनको

सदैव उचित रीतिसे काममें लावे और उनका कभी दुरुपयोग न करे। इन शक्तियोंके दुरुपयोग अथवा बुरी तरह काममें लानेकी बात हमने इस लिए कही है कि इनके द्वारा हानि और लाभ दोनों हो सकते हैं। यदि हम शक्तिका सदुपयोग करें अर्थात् उसे अच्छे काममें लगावें तो उससे हमको लाभ होगा, और यदि हम उसका दुरुपयोग करें—उसे बुरे काममें लगावें तो उसके द्वारा हमें हानि पहुँचेगी। जैसे आगसे रोटी बनाई जावे, या लोहा, पीतल आदि गलाकर बर्तन बनाये जावें, या सोना चाँदी गलाकर जेवर या सिक्के बनाये जायँ, या एंजिन बनाकर उससे रेलगाड़ियाँ और अनेक तरहके कारखाने चलाये जायँ, तो हम कहेंगे कि आगका सदुपयोग किया गया है और उससे लाभहीकी संभावना होगी; परन्तु यदि उसी आगके द्वारा लोगोंके घर जलाये जायँ, बन्दूक अथवा तोपके द्वारा गोले फेंककर मनुष्योंका नाश किया जाय तो यह उसका दुरुपयोग कहलावेगा और उससे हानि ही हानि होगी।

मनुष्यको अपना मनुष्यत्व स्थिर रखनेके लिए, अपना मानवीकर्त्तव्य पालन करनेके लिए, अपनी इन तीनों शक्तियोंका सदुपयोग करना चाहिए। यही नहीं, बल्कि हजारों लाखों-वर्षोंसे मिलनेवाले मनुष्योंके अनुभवजन्य ज्ञान-भाण्डारका ऋण चुकानेके लिए जहाँ तक हो सके उसे स्वयं भी कुछ उन्नति करके दिखलानी चाहिए या कोई नवीन वस्तु बनानी चाहिए; पुरानी तर्कीबों, पुरानी कारीगरियों और पुरानी रीतियोंसे बढ़िया कोई नवीन तर्कीब कारीगरी या रीति निकालकर उसे सर्वसाधारणमें प्रकट करनी चाहिए। इन नई नई खोजों या तर्कीबोंको छिपाना मानों मनुष्यजातिकी उन्नतिके मार्गमें बाधा पहुँचाना है। परन्तु अपनी बुद्धिको कभी ऐसी बातोंके सीखने सिखाने या ऐसी किसी बात या तर्कीबके निकालनेमें न लगानी चाहिए जिससे मनुष्य जातिकी हानि होती हो या मनुष्यके मनुष्यत्वमें फर्क आता

हो। जिन देशोंमें जब तक इस प्रकार नवीन नवीन उत्तम रीतियाँ निकलती रहीं, तब तक वे देश उन्नति करते रहे, और अन्य देशोंके सिरताज बने रहे, परन्तु जब उन्होंने इस प्रकार आगेको सरकना छोड़ दिया, और पुरानी रीतियोंको पकड़कर बैठ रहे, तब वे अन्य उन्नतिशील देशोंके अधीन बन गये। अर्थात् जो लोग पुरानी कमाईके भरोसे न बैठकर नई नई बातोंकी खोज करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं, संसारमें उन्हींकी तूती बोलती है।

मनुष्य अपनी वचनशक्तिकी बदौलत ही यह सब उन्नति करनेमें समर्थ हुआ है और आगेको करता जाता है, अतएव उसे उचित है कि वह इस शक्तिका उपयोग सदैव मनुष्यमात्रके लाभकारी कामोंमें ही करे। मनुष्योंने अपने विचार दूसरों पर प्रकट करनेके लिए एक और तर्कीब निकाली है और वह तर्कीब लिखनेकी है। इससे भी वे उसी प्रकार काम लेने लगे हैं जिस प्रकार कि मुंहके द्वारा बोलकर। बल्कि इस लिखनेकी तर्कीबके द्वारा वचनशक्तिकी अपेक्षा अधिक उन्नति हुई; क्योंकि मुंहके द्वारा हम अपने मनके विचार उन्हीं लोगों पर प्रकट कर सकते थे जो हमारे पास होते थे, परन्तु लिखनेकी तर्कीबसे हम अपनी बातें हजारों-लाखों मीलोंकी दूरी पर भी पहुँचाने लगे। इस लेखनकलाकी बदौलत एक और भारी लाभ यह हुआ कि हमारे लिखित अनुभवों तथा समस्त ज्ञानका लाभ हमसे बहुत पीछे पैदा होनेवाले लोगोंको भी होने लगा। इस लेखन-कलाकी विधिको और भी उन्नत बनानेके लिए लोगोंने छापनेकी तर्कीब निकाली कि जिसके द्वारा धड़ाधड़ लाखों करोड़ों पुस्तकें छपने लगीं। इस प्रकार बहुत थोड़े श्रमसे बड़े बड़े विद्वानोंके विचार सबको विदित होने लगे। इसके सिवा तार, टेलीफोन, बिना तारका तार, आदि अनेक प्रकारकी तर्कीबें निकाली गईं और मनुष्यबुद्धिकी गंभीर खोजसे और भी निकलती चली जा रही हैं। कहनेका मतलब यह है कि अपनी

बात दूसरों तक पहुँचानेकी कलामें जितनी उन्नति की जायगी मनुष्योंकी भी उतनी ही उन्नति होगी । अतएव मनुष्यको नये पुराने और सुदूरवर्ती लोगोंके विचारोंको जाननेके लिए सब प्रकारकी पुस्तकें पढ़नी चाहिए और अपने विचारों तथा अनुभवोंको लिखकर सर्व साधारणमें प्रकट करना चाहिए । ऐसा करनेसे ही वह अपनी तथा अपनी भविष्यत्में होनेवाली संतानकी भलाई कर सकता है ।

परन्तु मनुष्यको नवीन चीजें बनाने, नवीन तर्कीबें सोचने और बचनशक्तिको काममें लानेके लिए बड़ी सावधानीकी जरूरत है । क्योंकि जो शक्ति जितनी अधिक बलवान् होती है और जितना अधिक लाभ पहुँचाती है, वह विपरीत हो जाने या उल्टी रीतिसे काममें लाई जाने पर उतना ही अधिक नुकसान भी पहुँचाती है । उदाहरणार्थ—हाँकनेवालोंकी असावधानीसे यदि दो बैल गाड़ियाँ आपसमें लड़ जावें तो उसमें बैठे हुए दो चार मुसाफिरोंको ही चोट आयगी और यह चोट भी सांघातिक नहीं, साधारण ही होगी । परंतु यदि ड्राइवरकी असावधानीसे दो रेलगाड़ियाँ आपसमें लड़ जायँ तो सैकड़ों--हजारों आदमियोंकी मौत हो जायगी; उनकी हड्डियों-पसलियों तकका पता न चलेगा । इसी प्रकार नवीन आविष्कार और बातचीत करनेकी शक्तियाँ भी ऐसी ही महान् शक्तियाँ है कि जिन्होंने मनुष्यके रहन-सहन और जीवन-निर्वाहका एक बिलकुल विलक्षण और अद्भुत ढाँचा खड़ा कर दिया है और भविष्यतमें भी जिनकी बदौलत मनुष्य अपने जीवन-निर्वाहका नयेसे नया नकशा बनाता जाता है । अतएव इन शक्तियोंको बहुत सावधानीके साथ उपयोगमें लानेकी आवश्यकता है, नहीं तो यही शक्तियाँ मनुष्यका सर्वनाश करनेकी ताकत भी रखती हैं । जो लोग इनका दुरुपयोग करते हैं उनका विषमय फल भी तत्काल ही पालेते हैं ।

इस विषयमें सबसे भारी कठिनाईकी बात यह है कि मनुष्यमें नवीन नवीन बातें निकालनेकी बुद्धि और विवेकशक्तिके होते हुए भी उसके हृदयमें पशुओंके समान क्रोध, मान, माया लोभका आवेग भी भरा हुआ है कि जिसके बढ़ जाने या भड़क उठनेसे वह अपनी विवेक बुद्धिको त्यागकर आपेसे बाहर हो जाता है, और जान बूझकर ऐसे काम करनेके लिए उद्यत हो जाता है कि जिनसे उसकी प्रत्यक्ष हानि होती है। बहुधा क्रोधसे भरे हुए लोगोंके मुँहसे ऐसा कहते हुए सुना जाता है, कि चाहे मेरा घर मिट्टीमें क्यों न मिल जाय, परन्तु मैं अपने बैरीको खाकमें मिलाकर ही छोडूँगा; चाहे मेरी फाँसी क्यों न लग जाय परन्तु मैं अमुक आदमी की एकबार भरे बाजार इज्जत बिगाड़े बिना न रहूँगा। इस प्रकार क्रोधमें आकर मनुष्य न जाने क्या क्या कहता है और केवल कहता ही नहीं, कभी कभी कर भी बैठता है कि जिसका पीछे उसे बहुत पछतावा होता है। इसी प्रकार अपनी इज्जतके खयालमें इस देशके लोग अपने लड़के लड़कियोंके विवाहमें अपना सर्वस्व लुटाकर भिखारी बन जाते हैं और अपनी प्रिय संतानोंके सिरपर ऋणका इतना भारी बोझा छोड़ जाते हैं कि वे फिर अपनी उमर भर सिर नहीं उठा पाते हैं और न किसी मानके योग्य ही रह जाते हैं। ऐसे ही लोभ और मायाके वशीभूत होकर भी लोग ऐसा ही काम कर बैठते हैं कि जिससे उनकी बनी बनाई साख या इज्जत बिगड़ जाती है, और कभी कभी तो उनका सब कारोबार बंद हो जाता है और उन्हें जैलखानेकी हवा तक खानी पड़ती है।

मतलब यह है कि क्रोध, मान, माया लोभ, आदि मनके उफान ऐसे प्रबल हैं जो असावधान मनुष्यको बिलकुल बेकाबू कर देते हैं और उससे विपरीत काम कराने लगते हैं। जैसे आँखोंपर हरे रंगका चश्मा लगानेसे सब वस्तुएँ हरी हरी दिखाई देने लगती हैं और पीले रंगका चश्मा लगानेसे सब तरफ पीला ही पीला दिखाई देने लगता

है, उसी प्रकार क्रोध, मान, माया लोभ, आदि कषायोंके जोशसे भी मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और कर्त्तव्योंको त्यागकर वह अपनी बुद्धिको उन कामोंकी ओर झुका देता है कि जिससे उसके मनकी भड़क पूरी होती है। कभी कभी तो वह अपने मनकी भड़कको पूरी करनेमें इतना बेसुध और उन्मत्त हो जाता है कि चाहे उसके तमाम काम बिगड़ जावें--चाहे सारी दुनिया रसातलको चली जाय, परन्तु उसकी वह भड़क पूरी होनी ही चाहिए। इसी लिए असावधान और कषायी मनुष्य अपनी अनेक प्रकारकी प्रबल इच्छाओं और हृदयकी उमंगोंको पूर्ण करनेके लिए उपरिलिखित महान् महान् शक्तियोंको भी इसी ओर लगा देता है और झूठ, फरेब, धोखेबाजी, जालसाजी, मक्कारी आदि बुरे मार्गोंमें ही अपनी उक्त शक्तियोंको व्यय करने लगता है। परिणाम यह होता है कि वह सारे संसारके लोगोंसे मेल–जोल रखने, उनके जान मालकी रक्षा करने और सुख-शान्ति बढ़ानेके बदले उनको नुकसान पहुँचाने, उनका हक छीनने, माल उड़ाने, चोरी डकैती करने और पराई स्त्रियोंकी ओर कुदृष्टिसे देखने आदि बुरे बुरे कामोंमें फँस जाता है और इन कामोंमें सफलता प्राप्त करनेमें वह अपना परम सौभाग्य और कर्तव्य समझने लगता है। परन्तु ऐसा करनेसे वह मनुष्यत्वके ढाँचेमें बड़ी भारी खलबली पैदा कर देता है और पारस्परिक विश्वासको खोकर आपसमें मिल–जुलकर रहनेके अत्युत्तम प्रबंधको शिथिल बनाता है। ऐसे ऐसे विपरीत कामोंसे मनुष्य समाज अपने पदसे भ्रष्ट होकर केवल नीचेहीको नहीं आता, किन्तु वह पतित होकर नष्ट हो जाता है और किसी योग्य भी नहीं रहता।

पशुओंमें वाचाशक्ति न होनेसे वे आपसमें न तो झूठ ही बोल सकते हैं और न ऐसा भारी धोखा ही दे सकते हैं जैसा कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको दे सकता है। इसी प्रकार पशुओंके पास

अपने शरीरके सिवा अन्य कोई साधन भी नहीं हैं, जिससे वे अन्य पशुओंको भारी नुकसान नहीं पहुँचा सकते हैं। परन्तु मनुष्योंने दूसरोंको मारने या हानि पहुँचानेके लिए तीर-कमान, तलवार, बंदूक, तोप आदि अनेक ऐसे साधन बना लिये हैं कि जिससे वे भारी विध्वंस मचा सकते हैं, और कषायोंके भड़कनेपर बहुधा ऐसा करते भी हैं। इस प्रकार नवीन नवीन उपायोंके निकालनेकी बुद्धि और वाचा शक्तिके दुरुपयोगसे मनुष्यका मनुष्यत्व दूर होकर वह पशुसे भी गया बीता बन जाता है, और अनन्त दुःखोंमें फँसकर कहींका भी नहीं रहता है।

पशुगण अपना जीवन पृथक् पृथक् ही व्यतीत करते हैं। वे अपने जीवन-निर्वाहके लिए न तो आप ही कुछ काम करते हैं और न दूसरोंसे ही कुछ सहायता लेते हैं, बल्कि प्रकृतिके द्वारा जो कुछ संसारमें उत्पन्न होता है उसी पर अपना निर्वाह या गुजारा करते रहते हैं। परन्तु मनुष्यको अपने जीवन-निर्वाहके लिए ऐसी कई वस्तुओंकी जरूरत पड़ती है कि जिनको अनेक मनुष्य बनाते हैं। छोटेसे छोटे और बिलकुल सादे ढँगसे जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्यकी जरूरतें भी ऐसी नहीं हैं कि जो दो चार या दश बीस मनुष्योंकी बनाई हुई चीजोंसे पूरी हो सकें बल्कि छोटेसे छोटे और मामूली आदमीकी जरूरतें भी दुनिया भरके सभी मनुष्योंके कामसे पूरी होती हैं। अतएव प्रत्येक मनुष्यका दुनिया भरके सब मनुष्यों और उनके कामोंसे ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध हो रहा है कि अन्य मनुष्योंके कामोंमें गड़बड़ी पड़नेसे इसके काममें भी गड़बड़ी पड़ जाती है और उसके सुख तथा सुभीतोंको धक्का पहुँचता है। इस लिए प्रत्येक मनुष्यको स्वयं सावधान रहने और दुनिया भरके लोगोंको सावधान रखनेकी जरूरत है कि जिससे कोई मनुष्य किसी प्रकारकी गड़बड़ी या अशान्ति पैदा न करे और आपसमें प्रेमपूर्वक रहनेका जो प्रबन्ध

मनुष्यजातिने कर लिया है वह बिना किसी विघ्न बाधाके ठीक ठीक चलता जावे । परन्तु यह तभी हो सकता है जब सब लोग, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायोंको अपने काबूमें कर लें और उन्हें इतना न बढ़ने दें कि जिससे उनको आपसमें प्रेम और सलूकको तोड़कर किसी मनुष्यको दुःख देने, नुकसान पहुँचाने या उसके हक मारनेमें प्रवृत्त होना पड़े, या इन क्रोधादिक मनके आवेगोंकी सिद्धिके लिए मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट वृत्ति अर्थात् आपसमें बातचीत करनेकी परम पवित्र और श्रेष्ठ शक्तिको झूठ, फरेब, धोखेबाजी आदि अत्यन्त नीच कामोंके लिए व्यवहारमें लाना पड़े ।

परन्तु ऐसा होनेके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य संसारके सभी मनुष्योंको अपने शरीरका अंग समझे, और ऐसा विश्वास रक्खे कि जिस प्रकार शरीरके किसी अंगमें चोट लग जानेसे, या उसमें किसी प्रकारकी पीड़ा होनेसे सारे शरीरको बेचैनी सहनी पड़ती है, उसी प्रकार दुनियाके किसी मनुष्यको दुःख पहुँ-चनेसे भी मनुष्यमात्रको नुकसान पहुँचता है और मनुष्य जातिके हितमें धक्का लगता है । इस लिए परलोक सुधारनेवाले धर्मोंमें भलाई और बुराईका कैसा ही लक्षण क्यों न बतलाया गया हो और अपना परलोक सुधारनेके लिए मनुष्य उनका कैसा ही लक्षण क्यों न मानता हो, परन्तु मनुष्यको अपने मनुष्यत्वकी रक्षा करनेके लिए भलाई और बुराईका यही लक्षण मानना उचित है कि जिस बातसे मनुष्यजातिको लाभ होता हो और मनुष्योंके आपसके प्रेम और सलूकका ढाँचा मजबूत होता हो—वह भलाई है, और जिस बातसे उक्त ढाँचा बिगड़ता हो वह बुराई है ।

इस स्थान पर हम भलाई और बुराईके लिए पुण्य और पाप इन शब्दोंको काममें लाना नहीं चाहते हैं, क्योंकि ये परलोक सुधा-

रनेवाले धर्म्मोंके शब्द हैं; जिनके लक्षणोंमें खेंचातानी करके दुनियाँके लोग धर्म्मके नामपर गर्दनें कटवाते हैं तथा दूसरोंकी गर्दनें काटकर खूनकी नदियाँ बहाते हैं और इस प्रकार धर्म्मके नामको बदनाम करते हैं। मनुष्यके जीवन-निर्वाहके लिए तो भलाई और बुराई अथवा नेकी और बदी ये साधारण शब्द ही काफी हैं, क्योंकि उपरिलिखित लक्षणोंके अनुसार भलाई करता हुआ और बुराईसे बचता हुआ प्रत्येक मनुष्य इस दुनियाको ही स्वर्गधाम बना सकता है और सब तरफ आनन्द ही आनन्द फैला सकता है। ऐसे ही इसके विपरीत आचरण करके वह इस दुनियाको नरककुंड बना सकता है, और चारों ओरसे 'त्राहि त्राहि' की पुकार मचवा सकता है। सच तो यह है कि ऊपर लिखे अनुसार जीवन बिताये बिना अर्थात् भलाई करने और बुराईसे बचे बिना यह मनुष्य अपने आपको मनुष्य ही नहीं कह सकता है, बल्कि ऐसी दशामें वह पशुओंसे भी नीचे गिरा हुआ है और मनुष्य जातिके लिए वह शेर, भेड़िया, साँप, बिच्छू आदिसे भी अधिक दुखदाई है। अतएव मनुष्यको सबसे पहले मनुष्य बननेकी कोशिश करनी चाहिए और हरवक्त उसके लिए सावधानी रखनी चाहिए।

हमारी समझके अनुसार इसके लिए मनुष्यको निम्न लिखित पाँच नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिए। क्योंकि ये नियम उसके मनुष्य बनने और मनुष्यत्व प्राप्त करनेके प्राथमिक नियम हैं। १—मनुष्यमात्रसे प्रीति रखना और सब मनुष्योंको अपना कुटुम्बी या शरीरका अंग समझकर उनकी भलाई करना। इसीको दूसरे शब्दोंमें परोपकार भी कह सकते हैं। २—झूठ, फरेब, छल-कपट आदि बुरे कामोंमें अपनी परम पवित्र वाचाशक्तिको भ्रष्ट न करके सदैव सीधी, सच्ची और दूसरोंके हितकी बात कहना अर्थात् सत्य बोलना। ३—चोरी या जबरदस्ती आदिके द्वारा न तो किसीका माल उड़ाना और न किसी-

का हक छीनना, अर्थात् अपने ही धन, असबाब और अधिकारोंपर संतोष रखना। ४–अपनी स्त्रीके सिवा अन्य किसी स्त्रीसे कामचेष्टा न करना, अर्थात् शील पालना और ५–अपने अधिकारों और अपनी वस्तुओंपर ऐसा विह्वल न होना कि जिससे स्वार्थके वशीभूत होकर सार्वजनिक प्रेम, सहायता और सहानुभूतिके सुनहले नियमको तोड़ना पड़े या परोपकार बुद्धिको त्यागना पड़े। इसे थोड़ेसे शब्दोंमें 'अपरिग्रही वृत्ति' कह सकते हैं। ये पाँच स्थूल नियम ऐसे हैं कि जिनके बिना मनुष्यके मनुष्यपनका ढाँचा ही नहीं बन सकता है। इसकारण ये प्राथमिक नियम तो सभी मनुष्योंको सबसे पहले पालन करने चाहिए। इन नियमोंका पालन करके मनुष्य मनुष्यत्व प्राप्त करता और संसारमें सुख भोगता है, यही नहीं बल्कि वह अपने परलोक सुधारनेके योग्य भी बन जाता है। यही कारण है कि आजकल हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि जितने पारलौकिक धर्म प्रचलित हैं उन सबने दया पालने, सत्य बोलने, चोरी न करने, शील रखने और परिग्रह कम करने अर्थात् संसारकी वस्तुओंमें अधिक आसक्त न होनेको ही सबसे आवश्यकीय नियम ठहराया है और इनके विषयमें यहाँतक जोर दिया है कि इन नियमोंका पालन किये बिना मनुष्यका पूजा–पाठ, जप-तप, व्रत-उपवास, दान और त्याग करना निरर्थक और ढोंग हैं। जो मनुष्य उक्त नियमोंका पालन नहीं करता उसकी प्रार्थना, स्तुति, पूजापाठ और चढ़ावेसे किसी भी धर्मका देवता प्रसन्न नहीं होता है और न वह कोई पुण्य ही सम्पादन कर सकता है। अत एव प्रचलित धर्म्मोंके सिद्धान्तके अनुसार भी मनुष्यको सबसे पहले मनुष्य बननेकी आवश्यकता है और वह तभी मनुष्य बन सकता है जब कि संसारके सब मनुष्योंकी भलाईकी कोशिश करे, सच बोले, किसीका अधिकार न छीने, शील पाले और अपनी वस्तुओंके मोहमें बेसुध या आसक्त न हो जाय।

यदि सभी धर्म्मोंके मनुष्य अपने अपने धर्मके अनुसार इन पाँचों नियमोंका पालन करना आवश्यक समझ लें, अर्थात् अपने अपने धर्मके अनुसार मनुष्य बननेकी कोशिश करने लगें तो फिर संसारमें कोई भी झगड़ा बाकी न रहे, चारों ओर सुख-शान्ति फैल जावे और सर्वत्र आनंद ही आनंद दृष्टिगोचर होने लगे। फिर वे उपद्रव भी मिट जावें जो प्रतिदिन धर्मके नामसे होते रहते हैं और जिनके कारण मनुष्य जातिमें बड़ी अशान्ति या बदसलूकी फैली रहती है। इसके सिवा उन सब धर्म्मोंकी—जो परम पिता परमेश्वरके चलाये हुए बतलाये जाते हैं—बदनामी तभी दूर हो सकती है जब इन पाँचों नियमोंके पालन किये बिना किसी मनुष्यको यह अधिकार न हो कि वह अपनेको किसी धर्म्मका अनुयायी बतला सके। क्यों कि इन नियमोंके पालन किये बिना मनुष्यमें मनुष्यत्व नहीं आता है और बिना मनुष्यत्व प्राप्त किये कोई किसी धर्मका धारण करनेवाला भी नहीं हो सकता है। परन्तु इन नियमोंका पालन होना तभी सम्भव है जब क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायोंको सीमासे बाहर न बढ़ने दिया जाय, अर्थात् उनके वशमें न हो जाय, बल्कि उन्हींको अपने काबूमें रक्खे और उनसे अपनी इच्छानुसार काम ले। अतएव मनुष्यका सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वह अपने क्रोध आदि कषायोंको इस प्रकार काबूमें कर लेवे जैसे कि गाड़ीमें जोतनेके पहले घोड़े वशमें कर लिये जाते हैं। परन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि मनुष्य अपने विचारोंकी पूरी पूरी जाँच अर्थात् देखरेख रक्खे और मनको बुरी वासनाओंकी ओर दौड़नेसे रोकता रहे।

३– मनको अपने अधीन रखना चाहिए।

मनुष्य किसी वस्तुसे तो प्रीति करता है और किसीसे द्वेष, अर्थात् किसी चीजकी ख्वाहिश करता है और किसीसे नफरत। जैसे वह खट्टी और मीठी चीजें तो खाना चाहता है परन्तु कड़वी और कसैली चीजोंसे नाक सिकोड़ता है, सुगन्धके पास जाता है और दुर्गन्धसे दूर भागता है। मनुष्यके सब प्रकारके काम, सब तरहके उद्यम, श्रम, तदवीरें, आदि सब इसी इच्छा और द्वेषके ही कारण हुआ करते हैं। परन्तु जो यह बात निश्चित होती कि मनुष्यजाति अमुक वस्तुको चाहती है और अमुक वस्तुसे दूर भागती है तो बहुत सुविधा रहती, क्योंकि ऐसी दशामें संसारके सभी मनुष्य सदैव उन चीजोंको बनाने, संग्रह करने और उनकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया करते जो मनुष्यजातिको पसंद होती, और उन सब चीजोंको नष्ट कर डालते जो उसके नापसंद होतीं। परंतु यहाँ तो संसारकी समस्त वस्तुओंमेंसे कोई मनुष्य किसीकी चाह करता है और कोई किसीकी, अर्थात् एक मनुष्य जिस चीजकी चाह करता है दूसरा उसीसे घृणा करता है। इसी कारण संसारकी सभी चीजें मनुष्योंकी चाहकी चीजें बन रही हैं और सभी नफरतकीं। देखिए, मैला एक ऐसी चीज है कि जिससे सभी लोग अत्यन्त घृणा करते हैं, परंतु किसान लोग उसे बहुत उपयोगी समझते हैं और उसे दाम देकर खरीदते हैं।

यदि यही होता कि एक आदमी सदैव एक ही प्रकारकी चीजोंको पसंद करता और दूसरी प्रकारकी चीजोंसे नफ़रत करता, तो भी गनीमत थी, क्यों कि ऐसी दशामें प्रत्येक मनुष्यकी कोशिशें सदैव एक ही प्रकारकी रहतीं। परन्तु ऐसा भी नहीं होता है। एक ही

मनुष्य कभी किसी चीजकी इच्छा करता है और कभी किसीकी। पहले जिसकी इच्छा करता है पीछे उसीसे घृणा करने लगता है और पहले जिससे घृणा करता था पीछे उसीकी इच्छा करने लगता है। जैसे कि जिस मनुष्यके शरीरमें कफकी ज्यादती हो जाती है उसको मिठाई खानेकी बहुत इच्छा होती है और खटाईकी तरफसे मन हट जाता है, परन्तु जब उसका पित्त बढ़ता है तब वही मनुष्य खटाई खानेकी इच्छा करता है और मिठाईसे नफरत करने लगता है। इसी प्रकार यह भी नित्य देखनेमें आता है कि यह मनुष्य जिससे प्रथम बहुत प्रीति रखता था, जिसको देखकर उसकी कली कली खिल जाती थी और जिसे एक घड़ीके लिए भी अपने पाससे जुदा नहीं करना चाहता था उसीसे अगर किसी बातमें नाराज हो जाय तो फिर वह उसकी सूरत देखना भी पसद नहीं करता है बल्कि कभी कभी तो वह उसके खूनका प्यासा हो जाता है। गरीबीमें यह मनुष्य जिन चीजोंके लिए तड़फता था, अमीरी आ जाने पर उन्हीं वस्तुओंको देख कर नाक भौं सिकोड़ने लगता है और उन्हें क्षणभर भी अपने सामने नहीं ठहरने देता। जाड़ेमें वह रूई और ऊनके जिन मोटे मोटे कपड़ोंमें लिपटता था, जिन आगकी अँगीठियों पर तापता था, गरमीमें उन्हींसे घबड़ाता है, और गरमीमें जिन शीतल स्थानोंको चाहता था जाड़ेमें उन्हींसे दूर भागता है। गरज यह कि मनुष्यकी इच्छायें और जरूरतें भी सदैव स्थिर नहीं रहती हैं, बल्कि वे क्षण क्षणमें बदलती रहती हैं और मनुष्यसे तरह तरहके नाच नचाती रहती हैं।

मनुष्यकी ये इच्छायें जब प्रबल हो जाती हैं तब वे मनुष्य पर अपना ऐसा प्रभाव जमाती हैं कि वह अपनी हानि लाभको भूल जाता है और इनके फंदेमें फँसकर अपने आप ही अपना नुकसान करने लग जाता है। जैसे कि, बहुधा देखनेमें आता है कि यह निश्चय हो जाने पर भी कि

अमुक वस्तु खानेसे नुकसान पहुँचाती है, बहुतेरे लोग अपनी जीभके स्वादके वशीभूत होकर उस चीजको खा जाते हैं और बीमार पड़ जाते हैं, परन्तु फिर भी वे बाज़ नहीं आते हैं और बीमारीकी हालतमें भी उसे खाते जाते हैं और अपनी बीमारीको बढ़ाते रहते हैं। इसी-प्रकारके ऐसे अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं कि जिनसे सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य अपनी इच्छाओंके वशीभूत होकर ऐसे काम करता है कि जिनसे उसको बहुत हानि पहुँचती है।

ऐसी अवस्थामें मनुष्यका यह आवश्यक और मुख्य कर्तव्य है कि वह खूब सावधान रहे और अपनी इच्छाओंको ऐसा प्रबल न होने दे कि जिससे वे उसपर अपना प्रभुत्व करने लगें और उससे जिस तरह चाहें नाच नचावें; बल्कि मनुष्यको ही उनपर अपना आधिपत्य रखना चाहिए, अर्थात् अपनी विचारशक्तिके अनुसार हानिकारक इच्छाओं तथा प्रवृत्तियोंको सदैव दबाते रहना चाहिए।

इसी प्रकार यदि उसकी चाह या इच्छाशक्ति किसी ऐसी चीज़से नफरत रखती हो जो वास्तवमें लाभकारी है तो उसको उचित है कि वह अपनी नफरतको दबावे और उस वस्तुको काममें लावे। मान लो कोई कड़वी दवा किसी बीमारको बतलाई गई परन्तु उसके खानेको उसका जी नहीं चाहता है, तो उसको उचित है कि वह अपने जीको दबावे और उस दबाको खावे। इसी प्रकार यदि बालकोंके साथ खेलमें लगकर किसी विद्यार्थीका मन पाठशाला जानेको नहीं चाहती है तो उसे उचित है कि वह कभी अपने मनकी आज्ञा न माने और खेल छोड़कर तुरंत पाठशालाको चला जाय। इसी प्रकार अन्य सभी बातोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिए। क्योंकि इच्छा और द्वेषका उफान सदैव मनुष्यके मनमें उठता रहता है और वह सदैव उसकी विचारशक्तिको दबाता रहता है। इसलिए मनुष्यको सदैव उससे सावधान रहना चाहिए और अपनी विचारशक्तिको प्रबल रखकर

सदैव उसीके अनुसार कार्य्य करना चाहिए। कभी भूलकर भी इच्छा और द्वेषके फंदेमें न आना चाहिए, बल्कि अपनी इच्छा द्वेष अर्थात् चाह-अचाहको ही अपने लाभ-हानिके अनुसार बनाना चाहिए। यदि मनुष्य इस प्रकार सावधानीसे काम ले, तो वह अनेक आपत्तियोंसे बच जाय और सुख-शान्तिसे अपना जीवन बितावे।

हम पहले ही कह आये हैं कि पशुपक्षी तो सब कार्य्य अपनी प्रकृतिके ही अनुसार करते हैं-वे उसमें कुछ भी घटा बढ़ा या न्यूनाधिकता नहीं कर सकते। परंतु मनुष्यमें विचारशक्ति है कि जिसके द्वारा वह अपनी सुख-शान्ति बढ़ानेके नये नये उपाय निकालता है और अपनी प्रकृतिको दबाकर उनके अनुसार कार्य्य करता है। इस प्रकार वह उन्नतिपर उन्नति करता जाता है। ऐसा करनेसे ही वह पशुओंसे उत्तम हो सका है और अनेक प्रकारकी आपत्तियोंसे बचकर अपनी सुखशान्तिकी वृद्धि करनेमें समर्थ हुआ है। यह शुभ परिणाम अपनी हानि लाभका ख्याल रखने और अपनी विचारशक्तिसे काम लेनेके कारण ही हुआ है। परन्तु खेदकी बात है कि अनेक मनुष्य अपनी प्रकृतिको दबाने या बदल डालनेमें बहुत लापरवाही करते हैं जिसके उनकी प्रकृति बहुत बिगड़ जाती है और उनकी बासनायें बहुत प्रबल हो जाती हैं। वे उनको कठपुतलीकी तरह नचातीं और भले बुरे सब तरहके काम कराती हैं। इस तरह मनुष्य वासनाओंके वशीभूत होकर पशुश्रेणीसे भी नीचे गिर जाता है, और वह वास्तवमें अपनी वासनाओंके समक्ष काठकी पुतली ही बन जाता है।

देखिए, पशु अपनी प्रकृतिके अनुसार किसी खास ऋतुमें ही कामवासनाकी तृप्ति करते हैं, और इसी लिए उनका वीर्य्यबल इतना बढ़ा चढ़ा होता है कि एकबारके काम-सेवनसे ही गर्भ रह जाता है; परन्तु मनुष्यने अपनी प्रकृतिको एसा बिगाड़ रक्खा है कि वह बारहों

महीने काम सेवन करता रहता है, और इस प्रकार वह अपनी हानि करनेसे जरा भी नहीं हिचकता है । अधिक काम-सेवनसे जो भयंकर हानियाँ होती हैं वे किसीसे छिपी नहीं हैं । इसके अतिरिक्त मनुष्योंमें पशुओंकी अपेक्षा बल बहुत कम रहता है, इस लिए उसे पशुओंकी अपेक्षा अधिक संयमसे रहनेकी आवश्यकता है और प्रकृति भी यही कहती है, परंतु मनुष्यने अपने बुद्धिबलसे अनेक ओषाधियाँ, पुष्टिकारक भोजन और कई प्रकारकी ऐसी तदबीरें निकाली हैं कि जिनके कारण उसे नित्य ही उक्त वासना बनी रहती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य बहुत निर्बल हो गया है और दिन पर दिन निर्बल होता जाता है । जितना जितना वह निर्बल होता जाता है उसकी इच्छायें भी उतनी ही उतनी प्रबल होती जाती हैं और उसको हरवक्त अपनी लालसाओंको पूर्ण करनेमें फँसाये रहती हैं । इन वासनाओंकी उत्तेजनाके कारण उसकी विचारशक्ति ऐसी शिथिल हो जाती है कि उसे अपनी कमजोरीका ख्याल भी नहीं आता है । वह इस कामसे उस समय तक बाज नहीं आता है जब तक उसकी शारीरिक शक्तियाँ उसे साफ जवाब नहीं दे देती हैं और वह चारपाईपर नहीं पड़ जाता है । ऐसी हालतमें भी वह अपने पूर्व बलको पुनः प्राप्त करने और इच्छाओंको दबानेकी कोशिश नहीं करता है, बल्कि बीमारीकी हालतमें भी अपनी इच्छानुसार ही बर्ताव करता है । ओषधियोंके प्रभावसे ज्यों ही वह उठने बैठनेके योग्य हो जाता है त्यों ही वह अपनेको पूर्ण स्वस्थ समझ लेता है और शीघ्र ही फिर उसी काम-वासनामें लग जाता है। यह देखकर कहना पड़ता है कि इस समय मनुष्यकी दशा ठीक कराये पर चलनेवाले इक्के या शिकरमके घोड़ोंकीसी हो रही है, जो सदैव बिलकुल दुर्बल बने रहते हैं, परन्तु नित्य बीसों मील दौड़ते रहते हैं और शीघ्र ही मर जाते हैं ।

इस विषयमें दूसरा दृष्टान्त यह दिया जा सकता है कि खाना खाने पर जब मनुष्यका पेट भर जाता है तब उसका चित उससे हट जाता है, और इतने पर भी वह उसे जबरदस्ती पेटमें ठूंसना चाहता है तो उसे उबकाई आने लगती है और कभी कभी तो कै भी हो जाती है। गोदके बच्चोंको तो अक्सर ऐसा हुआ करता है। जब उनकी माँ उनको अधिक दूध पिला देती है तो वे उसे तुरंत ही उगल देते हैं और अपना पेट हलका कर लेते हैं। इस प्रकार मनुष्यकी प्रकृति स्वतः बहुत सावधानी रखती और होशयारीसे काम लेती है। पेट भर जाने पर वह तुरंत ही सूचना देती है कि अब पेटमें गुंजायशी नहीं है, परन्तु इतने पर भी जब कोई खाता ही जाता है तो वह उसे निकालकर बाहर फेक देती है। इसी प्रकार अगर किसी कारणसे पहला खाया हुआ भोजन हजम न हो पाया हो और दुबारा खानेका समय आ जाय तो उस समय भी उसे रुचि नहीं रहती है, मानों प्रकृति कहती है कि अभी पेटमें दुबारा खानेको जगह नहीं हुई है। ऐसे ही जब किसी कारणसे पाचनशक्ति बिगड़ जाती है तो फिर कई दिनतक भूख नहीं लगती है। इस प्रकार हर समय मनुष्यकी प्रकृति उसको सावधान करती रहती है, और मानो वह रेलके उस बाबूका काम देती है जिससे लाइन क्लियर मिले बिना—सफेद झंडी दिखाये बिना रेल नहीं चलती है—वहीं पर ठहरी रहती है।

परन्तु शोककी बात है कि मनुष्य अपनी प्रकृतिकी इस रोक या मनाही पर कुछ भी ध्यान नहीं देता है और उसके सुप्रबन्धको तोड़नेके लिए अनेक प्रकारके सुस्वादु भोजन बनाता है, उसके साथ ऐसी खट्टी मीठीं चटनियाँ लगाता है कि प्रकृति भी अपना काम भूल जाती है और जीभका स्वाद लेनेमें लग जाती है। इस प्रकार मनुष्य रिश्वत देकर या फुसलाकर प्रकृतिको अपना काम करनेसे रोकता है और जगह न होने पर भी पेटमें बहुतसा भोजन ठूंस देता है।

इसका परिणाम यह होता है कि उसका बहुतसा हिस्सा बिना पचे ही निकल जाता है और वह शरीरके ढाँचेको बिगाड़ कर अनेक रोग पैदा करता है।

काम-सेवन और भोजन इन दो दृष्टान्तोंसे पाठकोंको यह बात भली भाँति समझमें आ गई होगी कि मनुष्यने अपनी इच्छाओंके दबाने और बदलनेकी महान् शक्तिका दुरुपयोग करके अपनी प्रकृतिके उत्तम रूपको सँभालनेके बदले उसे बिगाड़ डाला है, जिसके कारण वह अनेक बड़ी बड़ी विपत्तियोंमें फँसकर पशुओंसे भी गया बीता बन गया है। विचारनेकी बात है कि छोटा बड़ा, निर्बल, सबल, कोई भी ऐसा पशुपक्षी नहीं है कि जो प्रकृतिविरुद्ध कामक्रीड़ा करता हो, अर्थात् हस्त-मैथुन गुदा-मैथुन आदिके द्वारा अपनी कामाग्निको बुझाता हो। परन्तु दुर्भाग्यवश मनुष्योंमें ये सब दोष उत्पन्न हो गये हैं, और स्त्री-पुरुष दोनों ही इन दोषोंके अपराधी हैं। इसका कारण यही है कि पशुओंको अपनी प्रकृतिके विरुद्ध न तो कोई बात सूझती है और न वे अपनी प्रकृतिके विरुद्ध कोई काम कर ही सकते हैं। परन्तु मनुष्य विचारशक्ति रखता है जिसके द्वारा वह प्रत्येक विषयमें नई नई बातें सोच सकता है और तदनुसार कार्य्य करके अपनी प्रकृतिको बदल भी सकता है। इस लिए जब वह असावधान होकर अपनी विचारशक्तिकी बागडोरको ढीली छोड़ देता है और अपनी हानिलाभके विचारको भूलकर अपनी इच्छाओंके वशमें हो जाता है तथा उनके इशारे पर नाचने लगता है, तब वह अपनी प्रकृतिको ऐसे विपरीत रूपमें भी बदल डालता है कि जिससे उसकी अपरिमित हानि होती है और वह अत्यन्त नीच और पतित बन जाता है।

इस कथनसे हमारा यह मतलब नहीं है कि पशु पक्षियोंकी नाईं मनुष्य भी अपनी प्रकृतिके ही अधीन रहे और अपनी विचारशक्तिके

द्वारा उसमें कुछ भी सुधार या फेरफार न करे, बल्कि हम भी यही कहते हैं कि उसे पशुओंकी नाईं सदैव एक लकीर पर न चलना चाहिए, प्रत्युत हर समय अपनी विचारशक्तिसे काम लेकर—जिस समय जैसी जरूरत हो—अपने प्रत्येक काममें नवीनता और रद्दोबदल करते रहना चाहिए और अपनी बुद्धिको बढ़ाना चाहिए, परन्तु असावधान होकर अपनी इच्छाओंको ऐसे उद्धत रूपमें प्रवृत्त न होने देना चाहिए, जिससे मनुष्यके मनुष्यत्वमें बट्टा लगता हो या जो उसे ऊँचे उठानेके बदले नीचे गिरा दें।

समझनेकी बात है कि घोड़ा जब तक खूंटेसे बँधा रहता है तब तक वह उस खूंटेके चारों ओर घूम सकता है और उतनी ही दूर जा सकता है जितनी लम्बी रस्सीसे वह बँधा है। परन्तु बँधा रहनेके कारण वह न तो अधिक उछल कूंद ही कर सकता है और न कहीं भाग ही सकता है। लेकिन खूंटेसे खुल जाने पर उसे इस बातकी आजादी मिल जाती है कि वह दुनिया भरमें जहाँ चाहे जाय और जैसी चाहे उछल-कूंद करे। इस प्रकार पशु तो अपनी प्रकृतिरूपी खूंटेसे बँधे हैं, जिससे वे उसके घेरेके बाहर न तो जा सकते हैं और न कुछ कर ही सकते हैं, परन्तु मनुष्य बिलकुल आजाद है, वह जो चाहे कर सकता और विचार सकता है। हमारा यह कहना नहीं है कि मनुष्य भी अपनी आजादी खो दे और विचारशून्य होकर प्रकृतिरूपी खूंटेसे बँध जावे, बल्कि हमारा यह कहना है कि वह किसी बातमें आँख मीचकर लकीरका फकीर न बने, किन्तु सभी बातोंमें वह अपनी आजादी—स्वतंत्रताको कायम रक्खे और अपनी विचारशक्तिके अनुसार काम करे, और इस प्रकार अपनी आजादीकी बदौलत सदैव आगेको बढ़ता रहे। परन्तु अपनी इस आजादीकी लगामको होशयारीके साथ अपने हाथमें सँभाले रहे और उसे जरा भी विचलित न होने दे, नहीं तो मनुष्यकी यही

आजादी उसे कहींकी कहीं ले जाती है और उसे दुराचरणके गहरे गढ़ेमें गिरा देती है।

सीधी बात यह है कि घोड़ेको खूंटेसे नहीं बंधा रहने देना चाहिए, किन्तु उस पर सवार होकर उसे अपनी इच्छानुसार—जहाँ चाहे ले जाना चाहिए । परन्तु जो मनुष्य घोड़ेकी सवारी करनेमें पूर्ण होशियार होगा, जो घोड़ेको हाँकने और काबूमें रखनेकी तर्कीब जानता होगा—वही उसे अपनी इच्छानुसार चला सकेगा और अपने इच्छित स्थान पर पहुँच जायगा । परन्तु यदि सवार अनाड़ी होगा, या चलते चलते असावधान हो जायगा, तो उसको उसका घोड़ा न जाने कहाँका कहाँ ले जायगा और मनमानी उछल कूद करके वह स्वतः ठोकर खायगा और सवारकी भी हड्डी पसली चूर मूर कर देगा । बेचारे पशु तो अपनी प्रकृतिरूपी खूंटेसे बँधे हुए हैं—जिसके बाहर वे कहीं एक कदम भी नहीं रख सकते हैं, परन्तु मनुष्य अपनी विचारशक्तिके द्वारा इस खूंटेको उखाड़ डालता है, और मनमानी करनेके लिए अपनेको आजाद छोड़ देता है । इस कारण यदि मनुष्य अपनी विचारशक्तिसे काम लेता रहे और अपने मनकी बागडोर सावधानीके साथ अपने काबूमें रक्खे, तो वह अवश्य ही परिणाममें सुख पावे और वह अपनेको बहुत शीघ्र उन्नतिके शिखर पर पहुँचा दे । परन्तु जो वह अपनी सावधानीमें तनिक भी चूक करे तो उसका मन उसे कुराहकी ओर ले जावेगा और उसे इधर उधर खूब भटका कर ऐसी जगह पटकेगा जहाँसे निकलना कठिन हो जायगा ।

४—इन्द्रियोंको वशमें रखना ।

छूना, चाखना, सूंघना, देखना और सुनना, इन्द्रियोंके ये पाँचों विषय असावधान मनुष्यको बहुत अधिक सताते हैं और तरह तरहके मज़े चखाकर—प्रलोभन दिखाकर उसे ऐसा बावला बना देते हैं कि वह अपनी सब सुधिबुधि भूलकर उनका गुलाम बन जाता है। यदि मनुष्यको इनमेंसे कोई एक ही विषय होता और असावधान मनुष्य उस एक ही विषयके वशमें होकर उसीकी धुनमें लगा रहता तो शायद उसकी इतनी अधिक फज़ीहत न होती, परन्तु उसके गलेमें तो इन पाँचों विषयोंका जबरदस्त फंदा पड़ा हुआ है, जिससे ये पाँचों विषय उसको अपनी ओर खींच रहे हैं और उसे अपने ही वशमें कर लेनेका प्रयत्न करते रहते हैं। इस कारण इन विषयोंके द्वारा असावधान मनुष्यकी ठीक ऐसी दशा हो जाती है जैसे कि नाटकके तमाशेमें दो जोरूवाले कमजोर मनुष्यकी दिखलाई जाती है। उसकी एक जोरू जो छज्जेपर रहती है उसके दोनों हाथ पकड़ उसे ऊपरको खींचती है, और दूसरी जोरू जो नीचेके मकानमें रहती है टाँगें पकड़कर उसे नीचेकी ओर खींचती है। इससे उसे बेचारेकी जान मुसीबतमें पड़ जाती है और उससे कुछ भी करते धरते नहीं बनता है। यदि वह पुरुष उन दोनों स्त्रियोंमेंसे किसी एकके वशमें हो जाता है और दूसरीको अकेली छोड़ जाता है तो उसकी दूसरी स्त्री भारी उपद्रव मचाती है और सारी रात रोने पीटने और कोसनेमें ही गँवाती है। उसकी इस हरकतसे उस पुरुषकी नाकों-दम आ जाती है और वह अपने विषय-भोगको भूल जाता है। इनके सिवा वे दोनों स्त्रियाँ अपनी अपनी सौत और उसकी संतानको सब

प्रकारसे तंग करने बदनाम करने और यहाँतक कि मार डालनेतकका भी उपाय करती हैं जिससे वास्तवमें उसी पुरुषका नुकसान होता है। यदि इन दोनों स्त्रियोंमेंसे कोई बहुत उद्धत होकर व्यभिचारणी बन जाती है तो इससे भी उस पुरुषहीकी बदनामी होती है और वह दुनियामें मुंह दिखलानेके योग्य नहीं रहता है।

असावधान मनुष्यकी ये पाँचों इंद्रियाँ भी ऐसा ही नाटक रचती हैं और उसे अपनी अपनी ओर खींचकर उसकी खूब दुर्दशा करती हैं। वे उसकी विवेकशक्तिको खोकर, हानिलाभके विचारको भगाकर और उसके सब सुप्रबन्धोंको मिटाकर उसे संकटमें फँसा देती हैं। ऐसी स्थितिमें वह पशुओंसे भी बदतर बन जाता है। परन्तु सावधान मनुष्यके लिए उसकी ये इन्द्रियाँ पाँच प्रकारके उत्तम औजारोंका काम देती हैं कि जिनके द्वारा वह संसारकी वस्तुओंके अनेक गुणों-को पहिचानता है और जरूरतके अनुसार उन गुणोंको अपने काममें लाता है। वह छूने (स्पर्श) के द्वारा खुरदरा चिकना, हल्का भारी, नरम कठोर और ठंडा गरम आदि जानता है; चाखने (स्वाद) के द्वारा खट्टा मीठा, कड़वा कसैला आदि स्वाद जानता है; सूंघने (घ्राण) के द्वारा अनेक प्रकारकी गंध पहचानता है; आँखोंके द्वारा काला, पीला आदि रंग देखता है, लम्बा चौड़ा, गोल चौकोर आदि रूप जानता है, नजदीक दूर आदि अन्तर देखता है और ऊँचा नीचा आदि स्थानका ज्ञान करता है; कानोंसे अनेक प्रकारके ताल, स्वर और अनेक प्रकारकी बोलियाँ पहिचानता है। इन सब बातोंकी जानकारी प्राप्त करके वह अपने सुखके अनेक कार्य साधता है और दिन पर दिन उन्नति करता जाता है।

परन्तु इन पाँचों इन्द्रियोंसे काम लेनेमें मनुष्यकी वही दशा होती है जो सरकसके तमाशेमें दो घोड़ोंके सवारकी होती है, जो कभी तो अपना एक पैर एक घोड़ेकी पीठ पर और दूसरा पैर दूसरे घोड़ेकी

पीठ पर रख कर खड़ा हो जाता है और दोनों घोड़ोंको दौड़ाये चला जाता है, और कभी एक घोड़ेकी पीठ पर तो बैठ जाता है और दूसरेकी पीठ पर अपनी टाँगें रख देता है, और कभी किसी दूसरी ही तरहसे बैठता है, परन्तु प्रत्येक अवस्थामें अपने दोनों घोड़ोंको एकहीसी चालमें ले जाता है। सरकसके इस सवारको हर वक्त बड़ी सावधानीसे काम लेना और दोनों घोड़ोंको अपने काबूमें बनाये रखना पड़ता है। क्योंकि अगर एक घोड़ा जरा भी आगे पीछे हो जाय, या दोनों ही घोड़े काबूसे बाहर होकर ऐसी तेजीसे भागने लगें कि सवार सँभल न सके तो सवारकी कमबख्ती आ जाय और उसकी टाँगें चिर जायँ, या वह धड़ामसे नीचे आ गिरे, या अन्य किसी आपत्तिमें फँस जाय। इसी प्रकार मनुष्यको भी अपनी इन्द्रियोंसे काम लेनेमें बड़ी सावधानी रखनेकी आवश्यकता पड़ती है और उनको अच्छी तरह अपने वशमें करना पड़ता है। यदि वह किसी समय जरा भी असावधानी करता है तो ये इन्द्रियाँ उसको धर दबाती हैं और उसे नीचे डालकर मिट्टीमें मिला देती हैं।

सरकसका खिलाड़ी तो दो घोड़ोंपर ही सवार होता है, परन्तु मनुष्यको अपनी पाँचों इन्द्रियोंपर सवार होना पड़ता है जो सरकसके घोड़ोंसे भी अधिक बलवान् और चञ्चल हैं। इस लिए अपनी इन्द्रियोंसे काम लेनेमें मनुष्यको बहुत सावधान रहना चाहिए तथा अपनी पाँचों इन्द्रियोंको भली भाँति वशीभूत करके उनकी चाल-ढाल पर पूरी पूरी देखरेख रखनी चाहिए। इन इन्द्रियोंको काबूमें रखनेके लिए मनुष्यको ऐसी सावधानी रखनी उचित है जैसी कि गोलियाँ उछाल कर तमाशा दिखानेवाला रखता है। वह दस दस, बारह बारह और कभी कभी इससे भी अधिक गोलियाँ ऊपरको उछालने लगता है। वह एकको उछालता है और दूसरीको पकड़ता है, फिर उसको उछालता है और तीसरीको पकड़ता है, इस प्रकार

सभी गोलियोंका एक ऐसा ताँता बँध देता है कि सभी गोलियाँ ऊपरको जाने लगती हैं और उनमेंसे एक-एक गोली क्रमसे उसके हाथमें आती जाती है जिसको वह फिर उछालता जाता है और दूसरीको पकड़ता जाता है। इस खेलमें उसको आकाशमें उछलती हुई सभी गोलियोंका पूरा पूरा खयाल रखना पड़ता है। वह न तो किसी गोलीको ऐसा बेतौर उछलने देता है कि वह अधिक ऊँची चली जाय, या इधर उधर निकल जाय, और न किसी गोलीको इस तरह उतरने ही देता है कि वह जमीन पर गिर जाय; बल्कि वह सभी गोलियोंको अपने काबूमें रखता है और जिस तरह चाहता है उनको नचाता है।

इसी प्रकार मनुष्यको भी उचित है कि वह अपनी पाँचों इन्द्रियोंसे काम लेता रहे, परन्तु किसी इन्द्रियको इस प्रकार न उछलने दे कि वह उसको जरूरतसे बाहर निकल जाय या इधर उधर विचल जाय; बल्कि अपना समय, अपनी अवस्था, अपनी हैसियत, अपनी परस्थिति, अपनी आमदनी और खर्च, अपना आगा पीछा, सुख दुःख, हानि लाभ और सब प्रकारकी जरूरतोंका विचार करके तदनुसार अपनी इन्द्रियोंको चलावे और अपनी सभी इन्द्रियोंका समुचित उपयोग करके उनसे पूरा पूरा आनन्द उठावे। परन्तु कभी भूलकर भी इन्द्रियोंके वशमें न होवे और न कभी किसी इन्द्रियसे जरूरतसे अधिक काम ही लेवे; बल्कि हर समय अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेता रहे और जिस समय जैसा उचित समझे वैसा ही करे और अपनी इन्द्रियोंको भी उसी प्रकार परिचालित करता रहे।

५–क्रोधादि कषायोंको वशमें रखना ।

जिस प्रकार ये पाँचों इन्द्रियाँ मनुष्यके पाँच तरहके अद्भुत औजार हैं कि जिनके द्वारा वह संसारकी वस्तुओंके अनेक गुणोंको जानता है और यदि उसकी कोई इन्द्रिय बिगड़ जाती है तो उसका उस इन्द्रियविषयक ज्ञान भी लुप्त हो जाता है और वह कठिनाईमें पड़ जाता है; बल्कि आँख और कान इन दो इन्द्रियोंके बिगड़ जानेसे तो उसका संसारमें विचरना और जीना ही कठिन हो जाता है–इसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, द्वेष, स्नेह, रंज, खुशी और भय आदि कषाय भी उसकी ऐसी प्रबल शक्तियाँ हैं कि जिनके द्वारा वह संसारके सब कार्य्य करता है। यदि उसमें ये शक्तियाँ न होतीं तो वह कुछ भी न कर सकता, बल्कि निष्क्रिय होकर अंतमें मर जाता। जिस प्रकार इन्द्रियोंसे सावधानीके साथ काम न लेनेपर वे मनुष्योंपर अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं और धीरे धीरे उद्धत होकर मनुष्यसे मनचाहा नाच नचाने लगती हैं, उसी प्रकार यदि इन लोभादिक शक्तियोंसे काम लेनेमें असावधानी होती है और उनकी पूरी पूरी चौकसी नहीं की जाती है, तो ये शक्तियाँ भी इन्द्रियोंसे अधिक उद्धत हो जाती हैं–महा भयंकर बन जाती हैं और बहुत उपद्रव मचा देती हैं। इस लिए इन लोभ क्रोधादिक महान् शक्तियों–हृदयके इन जबरदस्त उफानों-को खूब सावधानीके साथ काबूमें रखना, अपनी जरूरतके अनुसार उनसे काम लेना और सीमासे अधिक उभरने न देना बहुत जरूरी है। बल्कि अपने हानि-लाभ और सुख-दुःखके विचारोंके द्वारा इस बातका पूरा पूरा प्रबन्ध कर लेनेकी भी आवश्यकता है कि इन शक्तियोंमेंसे किससे कब कितना काम लिया जावे, अर्थात् हृदयके इन आवेगों या उफानोंमेंसे कब किस उफानको कितना उठाया जाय, या कितना कौन दबाया जाय।

मनुष्यके हृदयमें उठनेवाले इन आवेगों या उफानोंकी ठीक ऐसी दशा है जैसी कि किसी कारखानेके एंजिनमें भाफकी होती है। कारखानेमें पीसने, कूटने, दलने, फटकने, बुनने, कातने, औंटने, चीरने, फाड़ने, ठोकने, पीटने आदि अनेक कामोंके लिए अलग अलग कलें लगी हुई होती हैं और वे सब कलें उस एक एंजिनकी भाफकी ताकतसे ही चलती हैं। परन्तु उस कारखानेमें ऐसा प्रबन्ध बँधा रहता है कि कारखानेवाला जिस समय जिस कलको चलाना चाहता है उसीमें भाफकी शक्ति पहुँचा कर उसे चला देता है और जब चाहता है तब उसे बंद कर देता है। बीच बीचमें वह अपनी जरूरतके अनुसार उस कलके वेगको न्यूनाधिक शक्ति पहुँचाकर मंद या तेज भी कर देता है। मतलब यह कि कारखानेकी सब कलें उसके वशमें रहती हैं, वह जब जब जिन जिन कलोंको चाहता है तब तब उन्हें चला लेता है और जब जीमें आता है तब उन्हें बंद कर देता है और अपनी इच्छानुसार उनसे काम लेता है। परन्तु ऐसा उत्तम प्रबन्ध होने पर भी जब वह कारखानेवाला जरा असावधान हो जाता है और किसी कलमें जरूरतसे ज्यादा शक्ति पहुँचा देता है तो वह कल पहले तो उसी कार्य्यको नष्ट भ्रष्ट कर डालती है जो काम उसके द्वारा हो रहा हो, परन्तु जब वह कुछ और भी तेज हो जाती है तब वह अपने ही कल पुर्जे तोड़ने लग जाती है, और यदि बहुत ज्यादह गड़बड़ी मच जाती है तो वह भाफकी शक्ति उस सारे कारखानेको तहस नहस कर डालती है और दूर दूर तक धावा करके आसपासके मकानोंको भी नष्ट कर देती है, और इस तरह सारे नगर भरमें हाहाकार मचा देती है।

इस प्रकार मनुष्य भी एक बड़ा भारी कारखाना है। जीव कारखानेवाला है और मस्तिष्क उसका दफ्तर है, जिसमें बैठकर वह सब कार्य करता है और सबका हिसाब-किताब रखता है। पाँचों इन्द्रियाँ

उसके पाँच जासूस या विशेषज्ञ हैं, जिनके द्वारा वह वस्तुओंके अनेक गुणोंको जानता है और अपनी जरूरतके अनुसार उनको काममें लाता है। हृदय इस कारखानेका बड़ा भारी एंजिन है जिसमें हरवक्त भाफ उत्पन्न होती रहती है और वही भाफ क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, रंज, खुशी, और भय आदि शक्तियोंके रूपमें प्रकट होकर मनुष्यरूपी कारखानेको चलाती है, परन्तु जब जीव ग़ाफ़िल हो जाता है और मस्तिष्करूपी दफ्तरमें बैठकर पूरी पूरी सावधानीसे काम नहीं लेता, या इन शक्तियोंको अपने काबूमें रखकर जरूरतके अनुसार उन्हें तेज या हल्की नहीं बनाता है और उनको अनियमित या अन्धाधुन्ध चलने देता है, तब ये शक्तियाँ मनुष्यरूपी कारखानेको नष्ट कर डालती हैं और उनके झपेटेमें और भी जो कोई आ जाता है उनको भी वे भारी धक्का पहुँचाती हैं। इस तरह मनुष्यजातिके प्रबन्धमें एक भारी गड़बड़ मच जाती है और संसारमें असंतोष और अशान्ति फैल जाती है।

मनुष्यकी इन क्रोध मान आदि शक्तियोंकी पृथक् पृथक् रीतिसे परीक्षा करने पर जाना जाता है कि ये सभी एक खास हदतक उसका उपकार करनेवाली हैं। सबसे पहले हमें मानके विषयमें विचार करना चाहिए। मनुष्यको यह मान कषाय अनेक प्रकारकी बुराइयोंसे बचाता है, उसके परस्परके व्यवहार चलाता है, आपसमें विश्वास स्थापित करता है, अनेक प्रकारके ज्ञान और कला-कौशल सीखनेको उसे उत्साहित करता है, रात दिन परिश्रम करने और आजीविका बढ़ानेकी ओर लगाता है, उससे बड़े बड़े बहादुरी और चतुराईके काम कराता है और उसे सब तरहकी उन्नतिकी ओर खींच ले जाता है। इसके विपरीत जिस मनुष्यमें स्वाभिमानकी मात्रा कम हो जाती है वह बिलकुल ढीठ और बेशरम बन जाता है और नीचसे नीच कर्म करने तथा कर्महीन बन जानेसे भी नहीं हिच-

कता है । वह दूसरोंका धिक्कार या तिरस्कार सहन करके पराये टुकड़े तोड़नेमें तनिक भी नहीं लजाता है। सच तो यह है कि जिसके हृदयमें अपनी मान-मर्यादाका खयाल नहीं है वह वास्तवमें मनुष्य ही नहीं है; न तो उसपर किसी प्रकारका विश्वास ही किया जा सकता है और न उसका भरोसा ही । सच पूछो तो ऐसे आदमीसे न किसी प्रकारका व्यवहार करना उचित है और न वह पास बिठलानेहीके योग्य है। क्योंकि जिसे अपनी इज्जत आबरूका ख्याल नहीं है—अपनी मान-मर्य्यादाकी सुधि नहीं है, उसे दूसरेकी इज्जत बिगाड़ने या मान-मर्य्यादा भंग करनेमें क्या देर लगती है ।

परन्तु इस मानका अधिक बढ़ जाना भी बहुत हानिकारक है। क्योंकि अधिक मानी पुरुष अपनी ऐंठहीमें चलता है, आप तो किसीसे दबना नहीं चाहता है किन्तु दूसरोंको सदैव दबाता रहता है। उसकी इस चालसे अनेक आदमी उसके बैरी बन जाते हैं। इसके सिवा मानी पुरुष अपनी स्थिति, बल, आमदनी और जरूरतोंका ख्याल न करके अपनेसे बड़ोंका अनुकरण करने लग जाता है और अपनेको बड़ा सिद्ध करनेमें अपना सर्वस्व लगा देता है। इसका फल यह होता है कि वह इस बड़प्पनके जालमें फँस कर अपनी असली मान-मर्यादा भी खो देता है, और जब उससे कुछ नहीं बन पड़ता है तब वह दूसरोंसे डाह करने लगता है। अर्थात् स्वयं दूसरोंके बराबर उन्नति न कर सकने पर वह दूसरोंकी बढ़ती देखकर उससे मन-ही-मन जलने लगता है और उसे नीचे गिरानेका निंद्य प्रयत्न भी करने लगता है। इतने पर भी जब उसका कोई प्रयत्न नहीं चलता, तब वह मन-ही-मन उसके बर्बाद हो जानेकी भावना करता है और इसके लिए प्रतिदिन परमपिता परमेश्वरकी स्तुति करके उससे यही विनय करता है कि 'हे प्रभो ! उसका शीघ्र नाश कर दे ।'

इस मानके बढ़ जानेपर मनुष्य अपनी जाति, घराने और पूर्व अवस्थाके घमंडमें आकर अपनी आजीविकाके बहुत सुलभ और उत्तम उत्तम उपायोंको भी पसन्द नहीं करता है और बेकार बैठकर अपनी पहली पूंजीको खा डालता है। अंतमें बहुत शीघ्र भूखों मरने या भीख माँगनेकी नौबत आ जाती है—जिससे उसकी रही सही मान-मर्यादा भी नष्ट हो जाती है, और वह विवश होकर फिर अपने पेट पालनेके लिए ऐसे ऐसे खोटे काम करने लगता है कि जिसे सुनकर आश्चर्य्य होता है—अर्थात् वह बिलकुल भ्रष्ट और निर्लज्ज बन जाता है। इसी प्रकार जिन लोगोंको अपनी झूठी मान-मर्यादा बढ़ानेको धुन सवार हो जाती है वे—यह सोचकर कि धनसे ही इज्जत बढ़ती है—धन प्राप्तिके लिए बड़े बड़े अन्याय और कुकर्म करने लगते हैं। परन्तु ऐसा करनेसे वे शीघ्र ही किसी ऐसे झगड़ेमें फँस जाते हैं कि उन्हें जैलकी हवा खानी पड़ती है और उनकी रही सही इज्जत और साख भी धूलमें मिल जाती है। कहनेका मतलब यह है कि झूठे मानके फेरमें पड़कर मनुष्य स्वयं बर्बाद हो जाता है और दूसरोंको भी नुकसान पहुँचाता है। इससे सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार मनुष्यको अपने मानका खयाल छोड़ देनेसे हानि होती है, उसी प्रकार उसके जरूरतसे अधिक बढ़ जानेसे भी उसे नुकसान पहुँचता है, अतएव उसे उचित है कि वह सदैव अपनी विवेक-बुद्धिसे मानके सामञ्जस्यको बनाये रक्खे अर्थात् उसकी मर्यादाको न तो जरूरतसे अधिक बढ़ने दे और न घटने दे।

इसी प्रकार यदि मनुष्यके लोभ न हो तो वह न तो संसारकी वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए कोई प्रयत्न करे और न किसी वस्तुको सँभालकर रक्खे। मतलब यह कि उसकी गृहस्थीका ढाँचा ही बिगड़ जाय और वह पशु-पक्षियोंकी श्रेणीमें आ जाय। परन्तु लोभकी मात्रा बढ़ जाने पर भी उसकी जो दुर्गति होती है—उसे जो अप-

त्तियाँ उठानी पड़ती हैं वे किसीसे छिपी नहीं हैं। यह मनुष्य अति लोभमें पड़कर गैरजरूरी वस्तुओंका संचय करता, हजार दुःख झेलता और बड़ी जरूरतके समय भी उनको खर्च नहीं करता है। उनकी रक्षाके लिए अपनी जान निछावर करता और उनकी प्राप्तिके लिए महा अन्याय और नीचसे नीच कर्म करनेसे भी नहीं चूकता है। न तो वह राजदंडसे डरता है और न उचित अनु-चितका ही विचार करता है। इस लोभकी प्रबलताने संसारमें ऐसा घोर उपद्रव मचा रक्खा है कि मनुष्य जंगलके हिंस्र पशुओंसे भी अधिक दुष्ट और परापहारक बन गया है—वह दूसरोंको हानि पहुंचाने, दूसरोंके हक छीनने और दूसरोंका माल हड़प जानेमें जरा भी नहीं हिचकता है। मनुष्य जातिमें अशान्ति फैलनेका यह भी एक कारण है। प्रायः सभी मनुष्य अपना अपना स्वार्थ साधने और आपापोखीपनेमें पड़ गये हैं जिससे मनुष्योंके पारस्परिक व्यवहारका ढाँचा बहुत ही बिगड़ गया है। अतएव मनुष्यको उचित है कि वह अपनी लोभवृत्ति पर भी कड़ी निगाह रक्खे और कभी उसे सीमासे ऊपर नीचे न खसकने देवे।

मान और लोभके समान क्रोध भी मनुष्यकी एक बड़े कामकी शक्ति है। इस क्रोधके द्वारा ही वह अपने शत्रुओंको हटाता और अपनी मान-मर्यादा,धन-सम्पत्ति आदिकी रक्षा करता है। परन्तु बात बात पर क्रोध लाना, बिना जरूरतके उसका उपयोग करना और उसकी तेजीमें आकर आपेसे बाहर हो जाना या और अनुचित कार्य्य करने लगना बहुत बुरा है। अतएव क्रोधको भी सदैव अपने वशमें रखना चाहिए। याद रक्खो कि जिस प्रकार घरमें जलाई हुई अग्नि घरकी वायुको शुद्ध कर देती है, शरीरकी अग्नि पसीनेको निकालकर खूनको साफ करती है, उसी प्रकार क्रोधाग्नि भी मनुष्यके वैरियोंको दूर हटाती है और अनेक उपद्रवोंसे बचाकर उसे सुख शान्ति दिलाती है। परन्तु जिस प्रकार घरमें जलाई हुई अग्नि अधिक भड़क जाने

पर बेकाबू होकर घरको ही जला डालती है, शरीरकी अग्नि अधिक बढ़ जानेसे खूनको सुखा डालती और अनेक प्रकारकी बीमारियाँ पैदा करती है, उसी प्रकार क्रोधाग्निके अधिक भड़क जाने पर भी बहुत बुरा नतीजा निकलता है। इस लिए क्रोधको अपने काबूमें रखना और उसे सीमासे बाहर न बढ़ने देना बहुत लाजिमी है। इसके अतिरिक्त यह भी जान लेना चाहिए कि बात बातमें बिगड़ना, हर समय रूठना, चिढ़चिढ़ा स्वभाव बनाना, सदैव नाक भौं चढ़ाये रहना, रोष भरी बातें करना ये सब कमजोरीकी निशानियाँ हैं। ऐसा करनेसे अपना कुछ भी गौरव नहीं रहता है और छछोर-पन ही समझा जाता है। अतएव मनुष्यको हरसमय प्रसन्नचित्त और हँसमुख रहना चाहिए, और बात बातमें क्रोध नहीं दरसाना चाहिए। इसके सिवा अपनी संतानको, शिष्योंको, नौकरोंको या अन्य किसी अपने अधीनको सुधारनेके लिए दंड देनेमें या न्यायाधीश बनकर अपराधीको सजा देनेमें कभी भूलकर भी क्रोध नहीं लाना चाहिए, बल्कि उसके सुधारने और दूसरोंको उत्तम शिक्षा मिलनेके खयालसे यह काम बहुत शान्ति और विवेकके साथ करना चाहिए। ऐसे कामोंका क्रोधसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

कभी कभी मनुष्य ऐसी कठिनाईमें भी फँस जाता है कि सीधे-सादे उपायोंसे न वह अपने जान मालकी रक्षा कर सकता है न अपने प्रबल बैरीकी चोटसे बच सकता है और न किसी भारी फितने-फिसादको दबा सकता है। ऐसे कठिन प्रसंगके लिए मनु-ष्यके पास माया नामक एक शक्ति रहती है कि जिसके द्वारा वह झूठमूठ बातें बनाकर या कुछका कुछ दिखा कर अपनी जान बचा सकता है या किसी भारी फिसाद या उपद्रवको दबा सकता है। परन्तु इस निंद्य शक्तिका उपयोग अत्यन्त लाचारी दरजे या बहुत जरूरी समयके सिवा और कभी न करना चाहिए; बल्कि जहाँतक

हो सके इससे दूर ही रहना उचित है। क्योंकि मनुष्यका मनुष्यत्व परस्परके व्यवहारसे ही बनता है और परस्परका व्यवहार आपसके विश्वासके बिना कदापि नहीं चल सकता है। इस कारण आपसके विश्वासमें जितना धक्का लगता है मनुष्यका मनुष्यत्व भी उतना ही बिगड़ता है। इस लिए इस मायाचार करनेकी शक्तिको सदैव दबाये रखना ही उचित है। इसका उपयोग तो किसी ऐसी महान् लाचारीके समय ही करना चाहिए जब कि दूसरी कोई तदबीर चल ही न सकती हो और उसके बिना सिरपर कोई बड़ी भारी आपत्ति आती हो। परन्तु खेदकी बात है कि आज कलके मनुष्य बात बातमें मायाचारसे काम लेते हैं और झूठ, फरेब, धोखेबाजी, जालसाजी, आदिसे ही अपने छोटे बड़े सब काम चलाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्यके परस्परके व्यवहारमें बहुत बट्टा लग गया है और मनुष्य जातिकी वास्तविक उन्नतिका क्रम रुक गया है। इससे मनुष्य जातिकी सारी सुख-शान्ति नष्ट हो गई है और उसके दुःखोंकी संख्या बढ़ गई है। इस मायाचारने भारतवर्षको विशेष रूपसे घेर लिया है कि जहाँ लाखों आदमी मिलकर बड़ी बड़ी कम्पनियाँ तो क्या चलायँगे, दो सगे भाई भी मिलकर अपना साँझा नहीं निभा सकते हैं। इसी लिये हिन्दुस्तानका व्यापार नहीं पनपने पाता है, और जरा जरासी चीजोंके लिए हमे दूसरोंका मुंह ताकना पड़ता है।

भय भी मनुष्यकी बहुत रक्षा करता है। यदि सच पूछो तो भय ही उसे सब प्रकारकी बुराइयों और आपत्तियोंसे बचाता है। यदि मनुष्यको भय न होता तो वह जलती हुई आगमें कूद पड़ता और अपनी हानि लाभका विचार किये बिना ही ऐसे ऐसे अनेक उलटे पुलटे काम करता रहता। परंतु इसके विपरीत बिनाकारण भयकी कल्पना करना, जो आपत्ति आनेवाली है और टाले नहीं टलती है उसके

झेलनेके लिए तैयार न होना, किसी आपत्तिके आनेपर भयके मारे अपने होश खो देना, भयके समय धीरजको छोड़कर आपत्तिसे बचनेका कोई उपाय न कर सकना, डरके मारे हक्के बक्के हो जाना, या अपनी रक्षाके मार्गको निश्चित न कर सकना और बिना जरूरत भयके सन्मुख जाकर अपना सर्वनाश कर लेना, इत्यादि बातें ऐसी हैं जो भयका दुरुपयोग करने या उसकी मात्राके बढ़ जानेसे होती हैं और जिनके कारण मनुष्य पर भारी विपत्तियाँ आती हैं और दुःखकी भयंकरता बढ़ जाती है। सच तो यह है कि संसारके प्रायः सभी कार्योंमें हानि लाभ, सम्पत्ति विपत्ति और सुख दुःख लगे रहते हैं, अर्थात् यहाँ कोई भी कार्य्य ऐसा दिखाई नहीं देता है कि जिसमें केवल सुख ही सुख हो और दुःख नामको भी न हो, या जिसमें केवल लाभ ही लाभ हो, हानि ज़रा भी न हो। ऐसी अवस्थामें मनुष्योंको उन कामोंसे भय खाना चाहिए जिनमें हानि अधिक हो और लाभ कम हो और अपनी विचारशक्तिसे ऐसे काम चुन लेना चाहिए जिनमें विपत्ति कम हो और लाभ अधिक हो। परन्तु जिन लोगोंमें भयकी मात्रा बढ़ जाती है उनकी विचारशक्ति शिथिल पड़ जाती है, इस कारण वे इस बातका निश्चय नहीं कर सकते हैं कि किस कार्य्यमें अधिक विपत्ति है और किसमें कम। यदि कोई उनका इसका निश्चय भी करावे तो वे भयके मारे कम विपत्तिवाले कामोंको भी करनेका साहस नहीं करते हैं और भय तथा आकुलताहीमें अपना जीवन बितादेते हैं। इस कारण प्रत्येक कार्य्यमें भयसे काम तो अवश्य ही लेना चाहिए, परन्तु उसको जरूरतसे ज्यादः हर्गिज़ न बढ़ने देना चाहिए।

स्नेह और द्वेष, रंज और खुशी भी मनुष्यकी बहुत कामकी चीजें हैं। सच पूछो तो ये चारों शक्तियाँ मनुष्यसे तरह तरहके काम कराती हैं और उसको उन्नतिके मार्गपर चलाती हैं। परन्तु ये चारों

बातें भी तभी तक लाभकारी होती हैं जब वे अपनी उचित मर्यादाके भीतर रहती हैं। मर्यादा उल्लंघन करनेपर तो वे भी बहुत भयंकर हो जाती हैं और मनुष्यको बहुत हानि पहुँचाती हैं । जैसे कि स्नेह या मुहब्बतकी आग बढ़ जानेसे मनुष्य उस स्त्री या पुरुषसे मुहब्बत करने लगता है जिससे मुहब्बत करनेका उसको अधिकार नहीं होता है। फल यह होता है कि उसे धक्के खाने पड़ते हैं और अपमानित होना पड़ता है । वह इस मुहब्बतमें कभी कभी ऐसा विव्हल हो जाता है कि अपने तथा अपने प्रेमपात्रके, दोनोंके हानि लाभको भूल जाता है । जैसा कि इस देशके मातापिता अपनी संतानके स्नेहमें ऐसे बेसुध हो जाते हैं और लाड़-प्यार करके उनको ऐसा बिगाड़ देते हैं कि फिर उनको सारी उम्र धक्के ही खाने पड़ते हैं और अपने माता पिताके वे दुःखदाता बन जाते हैं । स्नेहकी मात्रा बढ़ जानेसे मनुष्यकी विचारशक्ति शिथिल पड़ जाती है और उसे अपने प्रेमपात्रकी बुराइयाँ भी भलाईके रूपमें दिखाई देने लगती हैं । इस तरह उसके प्रति पक्षपातकी मात्रा बढ़ जानेसे वह बिलकुल विचारशून्य हो जाता है । इसी प्रकार नफरत या द्वेषकी मात्रा बढ़ जानेसे भी मनुष्य अपनी विचारशक्तिको खो बैठता है और जिससे द्वेष हो जाता है उसकी भलाई या गुणको भी वह बुराई या दुर्गुण समझने लगता है । वह उसके नामसे नफरत करने लगता है और उसकी शकल देखकर मुंह फेर लेता है । बल्कि कभी कभी तो यहाँतक होता है कि वह जिस वस्तुसे नफरत करता है उसका नाम सुनकर ही उबकाई लेने लग जाता है । इसी प्रकार रंजके बढ़ जानेसे भी मनुष्यकी अकल मारी जाती है और वह पागलों जैसे कार्य्य करने लगता है । वह अपना सिर फोड़ता है, छाती पीटता है, कपड़े फाड़ता है, बाल नोंचता है, जहर खा लेता है, पानीमें डूब मरता है, आत्मघात कर लेता है या ऐसे ऐसे और भी कई तरहके विपरीत

कार्य्य करता है । परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो रंज मनुष्यका ऐसा उत्तम बन्धु है जो किसी कार्य्यके बिगड़ जाने पर या इच्छाके बिपरीत कार्य्य हो जानेपर उसको समझाता है कि यह कार्य हमें इतना अधिक प्यारा है कि जिसके लिए बारंबार प्रयत्न करने और नवीन नवीन युक्तियोंसे काम लेकर उसे किसी न किसी प्रकार सिद्ध करनेको जी तड़फता है, अर्थात् रंज यही सिखलाता है कि इस कार्य्यके बिगड़ जाने पर इससे मुंह नहीं छिपाना चाहिए, बल्कि पहलेसे अधिक साहस करके जिस तरह हो सके इस बिगड़े कार्य्यको बनाकर ही छोड़ना चाहिए । परन्तु मूर्ख लोग अधिक रंज करके अपने साहसको खो बैठते हैं और अपनी बुद्धिको भ्रष्ट करके उस कामको ही छोड़ देते हैं, बल्कि रंज मनानेमें लगकर अपने अन्य जरूरी कामोंको भी बिगाड़ लेते हैं और इस तरह अपनी हानि पर हानि करते हैं । वे रंज जैसी उत्तम शक्तिको बदनाम करके कहने लग जाते हैं कि क्या करें, हम तो रंजमें पड़े रहनेसे कुछ भी न कर सके और हमारे सभी काम बिगड़ गये । अत एव मनुष्यको उचित है कि वह भारीसे भारी विपत्ति आनेपर या अच्छेसे अच्छा काम बिगड़ जाने पर भी कभी अधिक रंज न करे और अपनी बुद्धि या साहसको कभी बिगड़ने न दे, बल्कि रंज या खेदकी अवस्थामें साहस और बुद्धिसे अधिक काम लेवे और अपने बिगड़े हुए कामको सुधारनेका प्रयत्न करे । यदि कोई ऐसी आपत्ति आपड़े कि जिसकी किसी प्रकार पूर्त्ति न हो सकती हो, तो ऐसी अवस्थामें बिलकुल रंज न करे और अपने मनमें संतोष धारण करके उस अवस्थाके अनुकूल किसी ऐसे उत्तम कार्य्यमें लग जावे कि जिससे वह रंज भूल जाय । अर्थात् रंजकी कोई बात हो जानेपर खाली कभी न बैठे, क्योंकि खाली बैठनेसे रंज बढ़ता है और रंजके सिवा और कुछ नहीं सूझता । इस लिए रंजके समय तो अवश्य ही किसी न किसी काममें लग जाना चाहिए और उसे इतनी

तनदेहीके साथ करना चाहिए कि जिससे और कोई खयाल पास न आने पावे।

खुशी या आनन्द भी मनुष्यकी उन्नतिमें बहुत सहायता पहुँचाता है। क्योंकि वह उसे अच्छे अच्छे और लाभकारी कामोंको करनेके लिए उत्तेजित करता है। एक खुशी मनुष्यको दूसरे ऐसे खुशीके कामको करनेके लिए प्रोत्साहन देती है कि जिससे पहलेकी अपेक्षा अधिक खुशी हो। परन्तु खुशीमें आपेसे बाहर हो जाना या खुशीके मारे अन्य आवश्यकीय कामोंको भूल जाना भी बहुत हानिकारक है। इसके सिवा अधिक खुशी मनानेमें सबसे बड़ी बुराई यह होती है कि जिस कामके लिए पहले अत्यधिक खुशी की जाती है उसके बिगड़ जानेपर उतना ही अधिक रंज भी होता है। संसारी कामोंका बनना बिगड़ना अपने हाथमें न रहनेके कारण उनके लिए अधिक खुशी या रंज मनाना बिलकुल व्यर्थ है, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यको रंज और खुशीसे कभी छुटकारा ही नहीं मिल सकता है।

ग़रज यह कि लोभ क्रोधादिक सभी उफान जब तक मनुष्यके वशमें रहते हैं, दबानेसे दबते हैं और उभारनेसे उभरते हैं, और जब तक वह अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेकर उनको अपनी इच्छाके अनुसार चलाता रहता है तबतक वे उसके बहुत कार्य्यकारी और सहायक रहते हैं, परन्तु जब वह बेपरवाह हो जाता है और इनकी पूरी पूरी देखभाल नहीं रखता है तब ये ही शक्तियाँ उस पर अपना अधिकार जमा लेती हैं और उसे कठपुतलीकी नाईं नचाकर उसे बरबाद कर डालती हैं। जो मनुष्य यह कहता है कि 'मुझे अमुक आदमीने गुस्सा दिलाया,' या 'क्या करूँ मुझे गुस्सा आही गया,' समझना चाहिए कि वह अपने गुस्सेको काबूमें नहीं रखता है, बल्कि वही गुस्सेके काबूमें है। इसी प्रकार जो मनुष्य किसीकी खुशामदमें आ जाता है या अपनी बड़ाई सुनकर फूल जाता है, समझना चाहिए कि उसे

अभिमानने ऐसा दबा रक्खा है कि वह अपनी विवेकशक्तिसे भी काम नहीं ले सकता है। इसी प्रकार अन्य सभी बातोंमें समझ लेना चाहिए और क्रोधादिक आवेगों पर अपना पूरा पूरा चौकी पहरा रखना चाहिए। किसी भी शक्ति या उफानको अधिक उभरने या शिथिल न होने देना चाहिए, वरन् उनसे यथोचित काम लेते रहना और उन्हें अपनी जरूरतोंके अनुसार चलाना चाहिए। इस बातका भी हर वक्त ध्यान रखना चाहिए कि जिस प्रकार खीर पकानेके लिए चूल्हेमें आग जलाते रहना जरूरी है, उसी प्रकार सांसारिक कामोंको करनेके लिए मनुष्यके हृदयमें लोभ, क्रोध, मान आदि कषायोंकी आगका रहना भी बहुत जरूरी है। इसी प्रकार जो रसोइया जरूरतके अनुसार चूल्हेकी आगको कमती बढ़ती करता रहता है वह अच्छी रसोई बना लेता है, परंतु जो अनाड़ी पूरी सावधानी नहीं रखता वह चूल्हेकी आगको या तो बिलकुल कम कर देता है जिससे उसकी खीर अधकच्ची ही रह जाती है, या वह उस आगको इतनी तेज कर देता है कि जिससे उफान आकर सारी खीर बाहर निकल जाती है या बर्तनहीमें जल जाती है। इसी प्रकार जो बुद्धिमान् पुरुष अपने हृदयके आवेगोंकी आगको अपने काबूमें रखता है और जरूरतके अनुसार उसे मन्द या तेज करके सावधानीसे काम लेता है वह अपने सब कामोंको उत्तम रीतिसे पूर्ण करके संसारमें यश पाता है, परंतु जो मूर्ख असावधान रह कर अपने कषायोंके सामञ्जस्यको बिगाड़ देता है वह स्वतः बिगड़ जाता है और संसारमें बदनाम होता है। इस लिए मनुष्यको सदैव सावधान रहकर विवेकके साथ काम करना चाहिए, क्योंकि ऐसा किये बिना उसका इस बहुरंगी दुनियामें निस्तार नहीं है।

६—खराब आदतें न पड़ने देना चाहिए ।

जिसप्रकार लट्टू पर डोरा लपेटकर घुमानेसे वह लट्टू डोरा अलग हो जाने पर भी बहुत समय तक घूमता रहता है, उसी प्रकार संसारकी सभी वस्तुयें संस्कारोंके अधीन हो जाती हैं, अर्थात् वे अपने अभ्यासके वशीभूत हो जानेपर आपसे आप वैसा ही काम करने लगती हैं और उसके विरुद्ध चलनेमें झिझकती हैं । यही अभ्यास बढ़ते बढ़ते एक प्रकारका स्वभाव बन जाता है और फिर उस अभ्यासका छुटाना या जरूरतके समय उसे दूसरे मार्गपर चलाना कठिन हो जाता है । इसी कारण बहुतसे मनुष्य अपनी आदतसे लाचार होते हैं और मौका बेमौका, समय कुसमय उसी आदतके अनुसार चलकर तकलीफ उठाते हैं, बड़ी बड़ी विपत्तियोंमें पड़ जाते हैं और फिर भी अपनी उस आदतको नहीं छोड़ सकते हैं । इसकारण मनुष्यको उचित है कि वह अपनेमें भली या बुरी किसी प्रकारकी आदत न पड़ने दे, सब तरहसे स्वतंत्र रहे और जब जैसी जरूरत हो उसीके अनुसार चले; परन्तु यदि इतना न हो सके तो कमसे कम बुरी आदतें तो कदापि न पड़ने दे और इसके लिए पूरी पूरी सावधानी रक्खे ।

मनुष्यको सबसे जल्दी और सुगमताके साथ उन सब चीजोंके खाने पीने और सूंघने आदिकी आदत पड़ती है—जो नशा करती हैं । नशेकी ये सब चीजें बहुधा बहुत ही बदमजा और दुर्गन्धयुक्त होती हैं कि जिनके खाने या सूंघनेसे कै आती है, या सिरमें चक्कर आकर बेहोशी सी हो जाती है । परन्तु थोड़े ही दिनोंमें जब इन चीजोंकी आदत पड़ जाती है तब इनके कारण शरीरमें बड़े बड़े रोग पैदा हो जाने पर भी इनके छोड़नेको जी नहीं चाहता है, और यदि किसी

प्रकार इनके छोड़नेकी इच्छा भी की जाय तो इनका छोड़ना असम्भवसा हो जाता है। इन नशोंकी शीघ्र आदत पड़ जानेका कारण यह मालूम होता है कि इनसे मनुष्यका दिमाग खराब हो जाता है, विवेकशक्ति शिथिल पड़ जाती है और भले बुरेकी पहिचान घट जाती है। इन नशोंसे शरीरमें थोड़ी देरके लिए गरमी बढ़ जाने और चेतनतासी मालूम होनेपर मनुष्य समझ लेता है कि हमारा बल बढ़ गया है और वह आनंद मनाने लगता है। ये सब नशे किसी प्रकार भी न तो मनुष्यके कुछ काम ही आते हैं और न उसको सुख पहुँचाते हैं, बल्कि उसके शरीरका सत्यानाश करके उसमें अनेक प्रकारके भयंकर रोगोंको पैदा कर देते हैं; और अगर किसी समय नशेके मिलनेमें देरी हो जाती है तो वे उसकी बहुत ही बुरी हालत बना देते हैं। इसीलिए नशेबाज अपने सभी जरूरी कामोंको छोड़कर नशा पूरा करनेकी अधिक फिकर रखते और अपने नशेको ही सबसे मुख्य कार्य समझते हैं। यही कारण है कि उनके ज़रूरीसे ज़रूरी काम भी पड़े रहते हैं और उनकी गृहस्थी बिगड़ जाती है। अतएव मनुष्यको इन नशोंको कभी अपने पास नहीं फटकने देना चाहिए और सदैव इनसे दूर रहना चाहिए।

बहुतसे मनुष्य इन बुरी आदतोंसे बचनेके लिए अपने ऊपर एक प्रकारकी जबरदस्तीसी किया करते हैं, अर्थात् वे ऐसी चीज़ोंके त्यागकी कसम खा लिया करते हैं; परन्तु हमारी समझमें जो मनुष्य इतना कमज़ोर है कि आगे अपनी विवेकशक्तिसे काम नहीं ले सकता है और बिना कसम खाये बुरी बातोंसे नहीं बच सकता है, उससे इस बातकी क्या आशा की जा सकती है कि वह आगे अपनी कसम कायम रख सकेगा या नहीं। क्योंकि व्यभिचारियों और नशेबाजोंके विषयमें नित्य ही देखनेमें आता है कि वे अपने बुरे व्यसनोंको त्यागनेके लिए दिनमें छह छह बार कसमें खाते हैं और छह छह बार ही

उन्हें तोड़ते हैं। हमारी समझमें तो अगर कसम खिलानेकी अपेक्षा उनको वारंवार इतना समझाया जाय जिससे उस बुरी आदतके दोष उनके हृदयमें जमकर उससे उनको पूरी पूरी ग्लानि हो जाय और साथ ही कई दिनतक उस आदतके छुड़ानेका उनको अभ्यास भी कराया जाय, तो वह बुरी आदत छूट सकती है, नहीं तो केवल कसम खिलानेसे कुछ नहीं होता बल्कि उससे और भी अधिक ढीटपन आ जाता है। इसके सिवा दुनियामें हजारों लाखों ऐसी बातें हैं कि जिनसे बचनेकी मनुष्यको जरूरत पड़ती है। ऐसी हालतमें वह बेचारा किस किसके त्यागकी कसम खाय और किस किसकी याद रखकर उसे निभावे। अतएव मनुष्यको सदैव अपनी विवेकशक्तिसे काम लेना चाहिए कि जिससे वह सदैव सब प्रकारकी बुराइयोंसे बचता रहे। इसके अतिरिक्त बहुतसी बातें ऐसी हैं जो किसी समय, किसी अवस्था और किसी अवसरपर तो बुरी होती हैं, और किसी समय, किसी अवस्था और किसी अवसर पर अच्छीं। इस कारण कसमें खानेसे कैसे काम चल सकता है? यही नहीं, वरन् ऐसा करनेसे मनुष्यकी विचारशक्ति भी अपना काम छोड़कर शिथिल और कमजोर बन जाती है।

परन्तु इन नशोंके विषयमें सबसे बड़ी कठिनाई तो यह आ पड़ी है कि हमारे देशके अध्यात्मरसके रसिक योगाभ्यासी और आत्मध्यानी साधु-संत बहुत करके इन नशोंको ही मोक्ष जानेकी सबसे उत्तम सवारी समझते हैं और इसी कारण वे दिन भर भंग पीने और गाँजे या चरसकी दमें उड़ानेमें ही लगे रहते हैं। नशा करनेके सिवा वे अपना और कोई काम ही नहीं समझते हैं। नशेकी घुमेरसे दिमागमें चक्कर आते रहने और घर आसमान सब कुछ घूमता हुआ नज़र आनेसे ये अन्तर्यामी और महाज्ञानी लोग यही समझते हैं कि हम बहुत तेज़ीके साथ मोक्षकी तरफ उड़े जा रहे हैं और

एक एक क्षणमें हजारों मीलका सफर तय कर रहे हैं; यह आकाश और धरती हमको ऐसी घूमती हुई नजर आती है जैसे कि रेलमें बैठनेसे आसपासकी धरती और वृक्ष घूमते हुए दिखाई देते हैं। यही कारण है कि गृहस्थ लोग भी इन नशेबाज फकीरोंको 'पहुँचा हुआ' समझते हैं, उनसे भूत-भविष्यत्की बातें पूछते और उनके वचनोंको पत्थरकी लकीर समझते हैं। यही नहीं, वे उनकी शक्तिको ईश्वर या प्रकृतिकी शक्तिसे भी अधिक मानकर उनसे ईश्वर या प्रकृतिके विरुद्ध काम करा लेनेकी आशा रखते हैं और इसी लालचसे उन्हें नशेकी चीजें भेंट किया करते हैं।

ये परोपकारी साधु सन्त इन मोक्षदायक नशोंको अकेला ही सेवन करके स्वार्थी नहीं बनना चाहते, बल्कि इनके उत्तम उत्तम गुण बतलाकर, बड़ी बड़ी महिमायें गाकर, बड़े आग्रहके साथ अपने श्रद्धालुओंको भी चखाते हैं और धीरे धीरे उनको भी नशोंका अभ्यास कराके मोक्षपथ पर ले जाते हैं।

इन मोक्षमार्गी साधुओंकी देखादेखी गृहस्थोंके धर्म्मगुरु ब्राह्मण-लोग भी शायद इसी भयसे नित्य भंगका लोटा चढ़ाया करते हैं कि नशा नहीं करेंगे तो मोक्ष तो क्या शायद स्वर्गमें भी घुसनेके अधिकारी नहीं रहेंगे। इसके सिवा वे भंगको अपने महादेव पर भी चढ़ाते हैं और ऐसा करके मानो वे इस बातका डंका बजाते हैं कि जो कोई इस नशेको बुरा कहेगा वह मानो देवताकी प्यारी वस्तुका अपमान करेगा और इस प्रकार देवताका कोप-भाजन बनकर अपना ही सर्वनाश कर लेगा। इसके सिवा अध्यात्मचर्चाके केन्द्रस्थान और मोक्षमार्गके एकमात्र अधिकारी इस परम पवित्र भारतवर्षमें ऐसे देवता भी निवास करते हैं जो शराबसे ही खुश होते हैं और इस लिए उनपर खूब ही शराब चढ़ती है और उनके पुजारियोंको वह कुछ भी नशा नहीं करती है। यही कारण है कि वे उसे पानी-

की तरह पीते हैं और भीतरके कपाट खोलकर भूत-भविष्यत्‌की सब बातें बतलाने लग जाते हैं।

पाश्चात्यदेशनिवासी यूरोपियन आदि जड़वादी तो शराबके सिवा और कोई दूसरा नशा ही नहीं जानते हैं। वे शराब भी केवल इसी लिए पीते हैं कि उनके अत्यन्त ठंडे देशोंमें—जहाँ बारहों महीना बर्फ जमा करती है और ठंडके कारण हाथ पैर हिलाना भारी हो जाता है—यह शराब बदनमें गरमी लाती, खूनके प्रवाहको तेज करती और मनुष्यके उत्साहको बढ़ाकर उसे कार्यक्षम बनाती है। परन्तु अध्यात्मरसके रसिक भारतवासियोंने इस विषयमें उनसे विशेष शोध की है। ये कहते हैं कि हिन्दुस्तान जैसे अत्यन्त गरम देशमें इन नशोंके पीनेसे मनुष्यको बहुत दूरकी सूझने लगती है और उसकी आत्मा परम पवित्र होकर शीघ्र ही परमात्म पदको पा लेती है। इसी लिए भारतवर्षके अध्यात्मवादियोंने अपने ज्ञानचक्षुओंसे नशेकी बीसों चीजें ढूंढ़ निकाली हैं, जिनके द्वारा वे शीघ्र ही मोक्षमार्गको तय कर लेते हैं और वहाँ पहुँचकर शीघ्र ही सत् चित् आनन्दमें लय हो जाते हैं—अनन्तकालतक परमानन्दमें मग्न रहते हैं।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य देशोंके जड़वादियोंने जड़ पदार्थोंके गुणोंकी खोजमें नशेको हानिकारक जानकर उसे त्यागना शुरू कर दिया है और अमेरिका जैसे ठंडे देशमें भी शराबका पीना राजाज्ञा द्वारा बन्द कर दिया गया है। परन्तु वे सब म्लेच्छ देश हैं, इस कारण इन अध्यात्मवादियोंके कथनानुसार वहाँ इस प्रकारके जितने उलटे कार्य्य हों—सब थोड़े हैं। परन्तु इस परम पावन भारतदेशमें ऐसा नहीं हो सकता है, बल्कि यहाँ अन्य सब नशोंके साथ साथ शराबका पीना भी हदसे ज्यादह बढ़ता जाता है। पचास वर्ष पहले जिस स्थान पर शराबकी बिक्रीका ठेका सौ रुपयेमें होता था वहाँ अब वह कई कई हजार रुपयोंमें होने लगा है और साल दर साल

बढ़ता ही चला जाता है। हरिद्वार आदि तीर्थोंपर इस शराबकी बिक्री इतनी अधिक होने लगी है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसका कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि शराब जैसे उत्तम पदार्थके गुणोंको पश्चिमके जड़वादी ज़रा भी नहीं पहिचानते हैं, इसीलिए वे इसको अपनी अज्ञानताके कारण त्यागने लगे हैं, परन्तु भारतवर्षके अध्यात्मवादी शराबके आध्यात्मिक गुणोंको भलीभाँति जानते हैं और इसीलिए वे रातदिन इसका प्रचार अधिकाधिक बढ़ाते चले जा रहे हैं।

यह अध्यात्मवादी भारत नशैली चीजोंकी खोजमें इतना निपुण हो गया है कि पश्चिमदेशवासियोंने अपनी जड़बुद्धिसे जो 'कोकेन' नामी एक ऐसी ओषधि निकाली है जिसके लगाते ही शरीर शून्य हो जाता है और इस कारण चीरफाड़में आसानी हो जाती है, उसमें भी उसने अपने ज्ञानचक्षुसे नशेका गुण पहिचान लिया है और उसे नशेके रूपमें इस्तैमाल करना प्रारंभ कर दिया है। यद्यपि गवर्नमेण्टने उसे बहुत हानिकारक और विषाक्त समझकर उसका खाना अपराध ठहराया है और जिसके पास एक रत्ती भर भी कोकेन मिल जाती है उसे दंड दिया जाता है, परन्तु अध्यात्मवादी भारतने इसका जो गुण पहिचाना है वह जड़वादी पश्चिम क्या जाने! इसीलिए भारतवासी अब भी अनेक गुप्त रीतियोंसे इसे मँगाते और लाखों करोड़ों रुपयोंकी (कोकेन) खा जाते हैं।

ऐसी दशामें बहुत कुछ सोच विचार करनेपर भी अब तक हमारी समझमें यह नहीं आया है कि हिन्दुस्तानमें नशेको बंद करनेका क्या उपाय किया जाय-सिवाय इसके कि जो लोग नशेको बुरा समझते हैं वे ऐसे अध्यात्मवादियोंसे दूर रहकर स्वतः नशा करना छोड़ दें और उसकी बुराइयोंको जोरशोरके साथ लोगोंपर प्रकट करें।

तमाखू खाना, पीना, सूंघना आदि छोटे छोटे नश यद्यपि मनुष्यको साक्षात् पागल नहीं बनाते हैं तथापि वे शरीरको बहुत अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। इसके सिवा इन छोटे नशोंसे भी लाभ तो कुछ होता नहीं है उलटे आदत पड़ जानेपर उनसे बहुत दुःख उठाना पड़ता है। इस लिए छोटा बड़ा कोई भी नशा नहीं करना चाहिए और किसी खास वस्तुकी आदत न डालकर स्वच्छन्दताका उपभोग करना चाहिए।

नशेसे दूसरे दर्जेपर मनुष्यके गले पड़ जानेवाले वे खेल हैं जिनमें हार-जीत होती है या मान कषाय भड़कता है। इन खेलोंमें भी वे खेल अधिक रुचिकर होते है और उनकी आदत भी जल्दी पड़ जाती है जिनमें मेहनत कम करना पड़ती हैं और बैठे बैठे ही हार-जीत हो जाती है। कुश्ती, कबड्डी, गेंदबल्ला, घुड़दौड आदि ऐसे कई प्रकारके खेल हैं कि जिनमें शारीरिक मेहनत भी खूब होती है और हार-जीत भी हो जाती है। यदि मनुष्य इन खेलोंको ऐसी सावधानीके साथ खेले कि जिससे उसके शरीरकी मेहनत तो हो जाया करे परन्तु उनकी अधिक लत न पड़ने पाय, तो ये खेल उसके लिए बहुत लाभकारी हैं। परन्तु मनुष्य यदि इन खेलोंको इतना अधिक खेलने लगे कि जिससे उसके जरूरी कामोंमें विघ्न पड़ने लगें तो ये वर्जिशके खेल भी हानिकारक और त्याज्य हो जाते हैं। रहे वे खेल जिनमें हार-जीत तो होती है परन्तु शरीरको कुछ भी मेहनत नहीं करनी पड़ती—जैसे कि सतरंज, गंजफा, ताश, चौपड़ आदि। सो ये खेल कार्य्यकारी तो कुछ भी नही होते, केवल दिल बहलानेके लिए खेले जाते हैं। यदि मनुष्य इनके बजाय अपने खाली समयको नई नई पुस्तकें पढ़ने, नई नई बातें सीखने या नई नई कारीगरीके काम करनेमें लगावे तो उसे अनेक प्रकारके हुनर आ जायँ और उसकी विशेष उन्नति हो जाय। इन कामोंके द्वारा

उसे समय बितानेकी चिन्ता न करना पड़े और कामके साथ साथ उसका दिल-बहलाव भी हो जाया करे। हिन्दुस्तानको तो खास तौरपर इन बातोंकी जरूरत है। क्योंकि यहाँ कारीगरीकी बहुत कमी है और समय भी खूब मिलता है। यदि कभी कभी इन खेलोंके द्वारा अपना दिल बहला लिया जाय तो हर्ज नहीं है; किन्तु इस बातका भय अपने हृदयमें अवश्य रखना चाहिए कि बारबार खेलनेसे इनकी आदत न पड़ने पावे। क्योंकि आदत पड़ जानेपर उसका पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है और जरूरी कामोंमें बाधा पहुंचने लगती है। यहाँपर एक बड़ीभारी कठिनाई तो यह है कि यहाँके अध्यात्मवादी कारीगरीके कामोंको अत्यन्त नीच समझते हैं, इस लिए वे कारीगरीके कामों द्वारा अपना दिलबहलाव कैसे कर सकते हैं? वे तो ज्ञान-चौसर बिछाते हैं या स्वर्गमोक्षकी बाजी लगाते हैं और इसीतरह अपना सारा समय बिताया करते हैं। यही नही, वे अपने धनको जड़ पदार्थ मानकर कारीगरी करनेवाले देशोंमें पहुंचाते जाते हैं और आप दिनपर दिन अकिञ्चन तथा अपरिग्रही बनकर आनन्दके तार बजाते और जड़वादियोंकी निन्दा करके फूले अंग नहीं समाते हैं।

हार-जीतवाले खेलोंमें वे खेल सबसे बुरे हैं जिनमें जबानी हार-जीत काफ़ी नहीं समझी जाती है, बल्कि हार-जीत होने पर कुछ लिया दिया भी जाता है। ऐसे खेलोंमें मान कषायके साथ साथ लोभ-वृत्ति भी भड़कती है और इसी लिए उनकी आदत भी शीघ्र पड़ जाती है। यह आदत कुछ दृढ़ हो जानेपर फिर टाले नहीं टलती है और दिनपर दिन अधिकाधिक प्रबल होती जाती है। ऐसे ही खेलोंको जुआ कहते हैं। जुआ खेलनेवाले बहुत नीच प्रकृतिके हो जाते हैं और सब तरहके बुरे काम करने लगते हैं, क्योंकि इन खेलोंकी हार-जीतसे कषाय बहुत भड़कता है और उसे एक बार

फिर खेलनेके लिए विवश करता है। कहनेका मतलब यह है कि यह उत्तेजन उसे बावला बना देती है। जब जुआ खेलनेके लिए पासमें द्रव्य नहीं रहता है तब उसकी चाट उसे अनुचित रीतिसे द्रव्य लानेको उसकाती है और जीतमें तो बिना मेहनत किये ही हरामका माल मिल जानेके कारण उसका चित्त उसे बुरे बुरे कामोंकी ओर झुकाता है और उसे नीचातिनीच बना देता है। इस कारण जिस खेलकी हार-जीतमें एक फूटी कौड़ी भी देना पड़ती हो उसे कभी भूलकर भी नहीं खेलना चाहिए। यही कारण है कि सरकारने भी जुएके खेलको अपराध ठहराया है और उसके खेलनेवालेको दण्ड दिया जाता है। परन्तु इसमें भी यह कठिनाई पड़ गई है कि भारतवर्षके अध्यात्मवादी दीवाली आदि त्यौहारोंमें अन्य व्रत उपवासोंके साथ साथ जुएका खेलना भी महा धार्मिक और अत्यावश्यकीय कार्य्य समझते हैं, और इसी लिए वे कानूनकी कुछ भी परवा न करके खूब जुआ खेलते और मोक्ष जानेकी अपनी मंजिलको आसान बनाते हैं। इस परम पावन भारतवर्षके आत्मज्ञानी साधु-संत भी अपने ज्ञानचक्षुके द्वारा सट्टे आदिके अंक बतलाते और इस प्रकार धर्मात्मा गृहस्थोंको जुआ खेलनेमें अनेक सुविधायें पहुँचाते हैं। वे उद्योग धंदेके द्वारा पैसा कमाना जड़वादियोंका कार्य्य बतलाकर उनकी खूब हँसी उड़ाते हैं, साथ ही हिन्दुस्तानियोंको बिलकुल बेकार, महादरिद्री और एक जरासी सुई तकके लिए दूसरोंका गुलाम बनाकर अध्यात्मरस चखानेमें जरा भी नहीं शरमाते हैं।

कठोर हृदयवाले मनुष्योंके लिए शिकार भी ऐसा दिलबहलाव या मनोरंजन है कि जिसकी बहुत शीघ्र लत पड़ जाती है और इसके शौकीन बंदूकको कंधेपर रखकर और बाज़ शकरू आदि महान् हिंसक पक्षियों तथा शिकारी कुत्तोंको साथ लेकर जंगलोंमें मारे मारे

फिरते हैं, भूख-प्यास, सर्दी-गरमी सब कुछ सहते हैं, सैकड़ों रुपया खर्च करते हैं और जब दो एक हरिण या दस बीस चिड़ियाँ मार लाते हैं तब बहुत ही खुशी मनाते हैं। उनकी खुशीका कारण यह है कि जब जानवर अपनी जान बचानेके लिए उनके आगेसे भागता है और वे उसका पीछा करके उसे जा दबाते हैं तब वे इसको अपनी भारी विजय समझते हैं। इसके सिवा शिकारीकी गोली लगनेसे जब जानवर तिलमिलाता है, उछल-कूद करता है, भागना चाहता है परन्तु उससे भागा नहीं जाता है, तब वह शिकारी अपनी बहुत भारी फतह मानता है और अपनी शिकारको तड़फते देखकर फूले अंग नहीं समाता है। परन्तु यह दिलबहलाव या मनोरंजन मनुष्यके हृदयको बहुत कठोर बना देता है जिससे उसकी सुख-शान्तिमें बहुत फ़र्क पड़ जाता है।

जो मनुष्य हैं उनके लिए तो यही उचित है कि वे अपने हृदयको कठोर न बनने दें और सब जीवोंके साथ प्रेमभाव रखकर अपने मनकी सुख-शान्तिको बढ़ावें। क्यों कि ऐसा करनेसे ही परस्पर प्रेम और सहानुभूति बढ़ती है और सर्वत्र आनन्द मंगल फैलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस समय मनुष्योंका पहले जैसा क्रूर स्वभाव नहीं रहा है। लड़ाईमें हाथ आये हुए शत्रु न तो अब भून भूनकर खाये जाते हैं, न युद्धमें पकड़े हुए या जीते हुए स्त्री-पुरुष गुलाम बनाये जाते हैं और न वे पशुओंकी तरह बाजारोंमें ही बेचे जाते हैं; बल्कि उनके साथ अब दयाका बर्ताव किया जाता है और उनसे किसी प्रकारका अमानुषिक कार्य नहीं लिया जाता है। पहलेके समान अब हाथीके पैरतले दबाकर, किसी ऊँचे मकान या पर्वतसे पटककर, कुत्तोंसे नुचवाकर, कोल्हूमें पेलकर, आरेसे चीरकर, तेलके खौलते हुए कढ़ाहेमें डालकर,

सारे बदनमें सुइयाँ चुभोकर, मिमयाई* बनाकर, जीतेजी खाल खिंचवाकर, आँखें निकलवाकर या दीवाल आदिमें चुनवाकर अपराधियोंके प्राण नहीं लिए जाते हैं और न किसी एकके अपराध परसे उसके समस्त कुटुम्ब और बालबच्चोंको ही सजा दी जाती है। शूलीकी सजा भी बंद हो गई है और उसके बजाय फाँसीकी सजा जारी की गई है कि जिसमें दो तीन मिनटमें ही जान निकल जाती है। अब पहलेके समान छोटे छोटे अपराधोंपर न तो फाँसी ही दी जाती है और न हाथ पैर ही कटाये जाते हैं, बल्कि अब जहाँ तक हो सकता है ऐसी कोशिश की जाती है कि जिससे अपराधी थोड़ी सजामें समझ जाय और फिर वह अपराध न करे। इसी लिए आजकल जैलखानोंमें पहलेके समान बेपरवाही और सख्ती नहीं की जाती है, बल्कि कैदियोंकी तनदुरुस्ती और सुविधाओंकी ओर पूरा पूरा खयाल रक्खा जाता है। आजकल किसीको दोषी या निर्दोषी जाननेके लिए उससे धधकती हुई आग या खौलते हुए तेलमें कूद पड़ने या हाथ डालनेके लिए नहीं कहा जाता है। इसी प्रकार अन्य कोई भयंकर अप्राकृतिक परीक्षा भी नहीं की जाती है। अब तो जहाँतक बनता है बिलकुल साधारण रीतिसे अपराधोंके जाँचनेकी चेष्टा की जाती है और इस कामको सम्पन्न करनेके लिए संदिग्धको किसी प्रकारकी तकलीफ या धमकी नहीं दी जाती है।

इसी प्रकार अब इस देशके उच्च जातिके लोग पहलेके समान अपनी कन्याओंको गला घोंटकर नहीं मारते हैं और न विधवा

---

* प्राचीन समयमें अच्छे मोटे ताजे जीवित मनुष्योंको खौलते हुए तेलके कढ़ाहेके ऊपर इस तरह औंधा लटका देते थे कि जिससे किये हुए नस्तरके घावसे एक एक बूंद खूनकी उस कढ़ाहेमें टपकती रहे। इस प्रकार उसके समस्त शरीरका खून टपक कर तेलमें पकनेसे जो वस्तु तैयार होती थी वह 'मिमयाई' कहलाती थी और घाव वगैरह भरनेके काम आती थी।

स्त्रियोंको मृतक पतिके शवके साथ ही जलाते हैं। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि अब पहलेके समान सुन्दरी स्त्रियों और कन्याओंके छीननेके लिए भारतीय वीरोंके लश्कर नहीं चढ़ते हैं और न अब ऐसी बातोंके लिए हजारों लाखों योद्धाओंके सिर कटाये जाते हैं। प्राचीन समयमें स्वयंवर जैसी पवित्र रीतिसे वर-निर्व्वाचन करनेमें भी तलवारें चलती थीं और जिसके गलेमें कन्या जयमाला पहिनाती थी उसके साथ लड़नेके लिए सब लोग तैयार हो जाते थे। कहनेका मतलब यह है कि पहले बात बात पर खून खराबी होती थी और यही मनुष्यका धर्म्म समझा जाता था।

परन्तु अब मनुष्योंने बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर ली है, इस लिए अब ऐसी बातोंके लिए लड़ना या युद्ध करना बड़ी शरमकी बात समझी जाती है। इस प्रकार मनुष्यजातिमें बहुत कुछ शान्ति बढ़ती जाती है, तथापि अभी तक मनुष्योंने पूर्णरूपसे मनुष्यत्वको ग्रहण नहीं किया है और न कठोरता तथा निर्दयताको ही पूर्णरूपसे त्यागा है। यही कारण है कि अब भी बहुतसी बातोंमें पहलेकी तरह युद्ध होते हैं और नर-संहारको शीघ्रता तथा दक्षताके साथ करनेके लिए बड़े बड़े भयानक यंत्र निकाले जाते हैं। इस लिए यह संसार अभी तक बहुत दुःखमय बना हुआ है और उसमें पारस्परिक सहानुभूति तथा विश्वबन्धुत्वका प्रचार नहीं हो सका है। इसके विपरीत अभी मनुष्य मनुष्यका शत्रु बनकर खूब उत्पात मचाता है और इसके परिणामसे अनेक प्रकारकी अशान्ति और दुःखोंकी उत्पत्ति होती है।

मनुष्य इसी सहृदयताके अभावके कारण मेंढ़े, मुर्गे, तीतुर, बटेर आदि अनेक पशु-पक्षियोंको आपसमें लड़ाता है और ज्यों ज्यों वे पशु-पक्षी लड़ लड़ कर और नोंच नोंचकर एक दूसरेको घायल करते हैं त्यों त्यों वह खुश होता है। यह सच है कि पहले जमानेमें मनुष्य भी इसी तरह लड़ाये जाते थे और एक दूसरेको घायल करते देख-

कर दर्शकगण बहुत खुश होते थे। उन दोनोंमेंसे जब तक एक मर नहीं जाता था तब तक वे हटने नहीं दिये जाते थे। यद्यपि अब ऐसी कठोरता नहीं की जाती है और न वह राजनियमानुसार ही विधिसंगत समझी जाती है, तौ भी मनुष्यमें अब भी इतनी कठोरता अवश्य बाकी है कि वह मनुष्योंका आपसमें बैर करा कर खुश होता है और भाई-भाईमें, बाप-बेटेमें तथा पति-पत्नीमें लड़ाई करा देता है और ज्यों ज्यों लड़ाईकी आग भड़कती है त्यों त्यों वह आनन्द मनाता है। इसी प्रकार अब मोक्ष या स्वर्गप्राप्तिके लिए नदीमें डूब मरने, हिमालयमें जाकर गलने या करौंतसे कटकर मरजानेका उपदेश नहीं दिया जाता है और न देवताओंकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए नरबलि ही चढाई जाती है, परन्तु देवताओंके नाम पर पशुओंको मारना अभी तक जारी है। आजकल आत्मघात करना पाप समझा जाने लगा है, तौ भी महीनों तक भूखे रहना, गरमीके दिनोंमें आग तपना या धूपमें बैठना, जाड़ेमें पानीमें डूबे रहना, औंधा लटकना, निरंतर खड़े रहना, काटोंपर सोना, समाधि-ले लेना आदि अनेक घोर शारीरिक कष्ट मोक्षप्राप्तिके साधन माने जाते हैं और इन काय-कष्टोंको सहन करनेवाले व्यक्ति खूब ही पूजे जाते हैं।

मनुष्योंका यह कठोर व्यवहार और घोर दुःख तभी दूर हो सकता है जब वे अपने हृदयको नरम बनानेकी कोशिश करें, और उनका हृदय नरम तभी हो सकता है जब वे पशुपक्षियोंसे भी प्रेमका व्यवहार करना सीखें, अर्थात् शिकार आदि निर्दयता-पूर्ण कामोंको छोड़ कर समताका बर्ताव करें।

मनुष्योंको इंद्रियोंके विषय-भोगकी भी आदत पड़ जाती है जो कि पीछेसे बहुत दुःखदायक प्रतीत होती है। इस लिए मनुष्योंको अपनी इन्द्रियोंकी देखरेख रखनी चाहिए और किसी बातकी आदत

न पड़ने देना चाहिए, बल्कि हर समय अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेकर सदैव स्वाधीनतापूर्वक कार्य्य करना चाहिए। इन्द्रियोंके विषय-भोगकी आदतोंमें जीभके चटोरपन और काम-सेवनकी आदत बहुत जल्द पड़ जाती है और बहुत कुछ उलटे-पुलटे नाच नचाने लगती है। इस लिए इन दोनों बातोंसे बहुत सावधान रहना चाहिए, अर्थात् इनको कभी सीमाके बाहर न बढ़ने देना चाहिए। चटोर-पनकी आदतमें भोजनमें मिरच मसाले आदि डालकर चटपटा बनानेकी आदत भी ऐसी है जो नशेकी तरह दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। यदि किसी समय खानेमें मिरच मसाले न हों तो वह खाना ही नहीं खाया जाता है। मिरच स्वास्थके लिए बहुत हानिकारक है, इस लिए मिरचको कदापि नहीं खाना चाहिए और यदि वह कभी खाई भी जाय तो उसकी आदत हर्गिज न पड़ने देना चाहिए। जिन लोगोंको एकबार भी मांस खानेका मौका मिल जाता है उनकी जीभको इसका बड़ा चसका लग जाता है और फिर उनके लिए इसका पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। मांस खाना मनुष्यको किसी भी तरह शोभा नहीं देता है। क्योंकि इस मांसको सौम्य हृदयवाले पशुपक्षी भी तो नहीं खाते हैं। इसे शेर भेड़िया आदि वे ही जीव खाते हैं जो महान् क्रूर, निर्दय और हिंस्र स्वभावके होते हैं। ऐसी दशामें यदि मनुष्य मांस खाता है तो यही समझना चाहिए कि वह भी उन्हीं जैसा क्रूर, निर्दय और हिंस्र है। इसमें संदेह नहीं है कि एक समय ऐसा था जब आफ्रिका आदि देशोंके मनुष्य मनुष्यतकको मारकर खा जाते थे और इस पवित्र भारतदेशमें भी नरभक्षक मनुष्य निवास करते थे—जिन्हें राक्षस कहते थे। परन्तु अब सभी देशोंके मनुष्योंने सभ्यतामें इतनी उन्नति कर ली है कि वे नरमांसको खाना अपने मनुष्यत्वके विरुद्ध समझते हैं। परन्तु मनुष्यकी उन्नतिमें अब तक यह कसर बनी हुई है कि वह पशु-

पक्षियोंका मांस खाता है। जब उसके हृदयसे यह कठोरता भी निकल जायगी तभी कहा जा सकेगा कि उसने पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त कर लिया है। ऐसी अवस्थामें ही पूर्णशान्ति स्थापित हो सकेगी और मनुष्य मनुष्यमात्रका बन्धु बनकर सर्वत्र आनन्द फैला सकेगा। यह सच है कि इस समय भी अनेक लोग मांस नहीं खाते हैं और यूरोप आदि देशोंमें भी मांसका खाना कम होता जाता है। मांस खानेसे अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पति होती है और इसी लिए मांसाहारी लोग भी अब उसके दुर्गुणोंसे परिचित होकर उसे त्यागने लगे हैं। परन्तु इस परमपवित्र भारतदेशमें जहाँ देवताओंके लिए मांसका चढ़ाया जाना जरूरी बतलाया जाता है और जहाँ श्राद्ध जीमनेवाले ब्राह्मणोंके लिए इसका खाना लाज़िमी कहा जाता है, वहाँ इसका छूटना बहुत मुश्किल है। अतएव यहाँ पर मांसाहार छुड़ानेके लिए बहुत भारी प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। परन्तु यह प्रयत्न तभी कार्य्यकारी हो सकता है जब लोगोंके हृदयसे धार्मिक पक्षपात हट जाय और वास्तविक विचारप्रणाली प्रतिष्ठित हो।



७—काम-वासना ।

इन्द्रियोंके विषयभोगोंमें सबसे प्रबल और अधिक उद्धत कामवासना ही है कि जिसकी इच्छा उत्पन्न होते ही मनुष्य अपनी सारी सुधबुध खोकर उन्मत्त बन जाता है। विशेष करके कमजोर आदमियों पर इसका खूब जोर चलता है और वह उनको अपने काबूमें करके खूब नाच नचाती है। इसी लिए सभ्य मनुष्योंने यह रीति निकाली है कि कामेन्द्रिय सदैव छिपाकर ही रक्खी जावे और उसका नाम भी न लिया जाय, जिससे हरवक्त उसकी याद आकर मनमें भड़क पैदा न हो। विवाहकी प्रथा भी मनुष्योंमें इसी गरजसे जारी की गई है कि अपनी काम-वासना पूर्ण करनेके लिए एक पुरुषके लिए एक स्त्री, और एक स्त्रीके लिए एक पुरुष मुकर्रर हो जाय और एक ही स्त्रीपर अनेक पुरुषोंका झगड़ा होकर खून-खराबा न होने पावे। एक समय था जब विवाह-प्रथा जारी रहने पर भी—इस विषयमें बहुत झगड़े हुआ करते थे और महा अशान्ति छाई रहती थी,

उस समय यह भारतवर्ष हजारों छोटे छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था। प्रत्येक राजा हजारों स्त्रियोंके साथ विवाह करता था और अपनी सारी उम्र स्त्रियोंके ब्याहनेमें ही गँवाता था। जहाँ कहीं सुन्दरी स्त्रीका नाम सुन पाता था वहीं पर अपनी सारी सेना लेकर चढ़ाई कर देता था और हजारों मनुष्योंके सिर कटवा कर—खूनकी नदियाँ बहाकर जिस तरह हो सकता था उसे लेकर ही आता था। इसी कारण उस समय राजालोग प्रायः ऐसी ही लड़ाइयाँ लड़ते थे और वीर क्षत्रिय भी इसीमें अपनी बहादुरी समझते थे। चाहे कितने ही आदमी घास—फूसकी तरह क्यों न कट जायँ परन्तु अपने स्वामीको

नवीन नवीन सुन्दरी स्त्रियाँ लाकर देना ही चाहिए—यही उस समय-की राजभक्त सेनाकी कर्त्तव्यनिष्ठा थी। यही कारण है कि उस समय बड़ी अशान्ति छाई रहती थी और घरमें कन्याका जन्म होना महान् दुर्भाग्य समझा जाता था। क्योंकि जब एक कन्याको दस बलवान् पुरुष माँगते हों और दसों दलबलसहित उसे लेनेके लिए चढ़ आते हों तो ऐसी हालतमें बेचारे कन्यावालेकी कहाँ तक खैर रह सकती है। उसके सिरपर उस समय महान् विपत्ति आ पड़ती थी और उसके दरवाजेपर सैकड़ों मनुष्योंके सिर कट जाते थे, तब कहीं वह कन्या किसी एकके हाथ लगती थी और उसीके साथ उसका विवाह होता था। उस समय इन झगड़ोंसे बचनेके लिए लोगोंने स्वयंवरकी प्रथा निकाली थी, अर्थात् कन्या जिसे पसंद करे उसीके साथ उसका विवाह हो जाय। परन्तु उस समयके पराक्रमी पुरुषोंने स्वयंवरमें भी दंगा मचाना शुरू कर दिया और किसी एकके गलेमें जय-माला डाल देने पर भी उस स्त्रीको छीन लेनेके लिए जोर जुल्म होने लगा। इस प्रकार स्वयंवरकी पवित्र भूमि रणचण्डीका क्रीड़ा-स्थल बनने लगी और वहाँ हर्ष तथा मांगलिक कृत्योंकी जगह शोक—विषाद, मार—काट तथा लाशोंका भयंकर दृश्य दिखाई देने लगा। जब इस तरह यह स्वयंवरकी रीति भी कामयाब नहीं हुई तब उच्च जातिके लोगोंने लाचार होकर कन्याओंको पैदा होते ही मार डालनेकी रीति चलाई।

उस समयके राजाओंको नित्य नई नई नवयौवना स्त्रियोंके साथ विवाह करते रहने पर भी वेश्यायें रखनेकी आवश्यकता पड़ती थी। बहुत करके पंखा झलने और चँवर ढोरनेके लिए वेश्याएँ ही रक्खी जाती थीं। वेश्याएँ नित्य दरबारमें आँखोंके सामने रहतीं और युद्धमें भी साथ जाती थीं। इनका काम सदैव मनोरंजन करना था। यह छोटे छोटे राजाओंका हाल था, बड़े बड़े महाराजा तो हजारों रानियाँ

रखते थे और इतने पर भी वेश्याओंसे दिल बहलाते थे। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि जिन शूद्रों और म्लेच्छोंकी परछाई पड़नेसे भारतके धर्मात्मा अपनेको अपवित्र समझते थे उन्हींकी सुन्दरी कन्याओंको खुशीसे अपने घरमें डाल लेते थे और अपने रनवासकी शोभा बढ़ाते थे*। उस धर्म्मयुगमें विवाहके सिवा व्यभिचारकी भी बहुत प्रवृत्ति बतलाई जाती है। कहा जाता है कि बलवान् राजा अपने अधीन राजाओंकी सुन्दर रानियों और प्रजाकी खूबसूरत स्त्रियोंको छीन मँगाते थे और बेचारी निर्बल प्रजा चूंतक नहीं करते पाती थी। हिन्दूपुराण तो इस व्यभिचारका यहाँतक पता बतलाते हैं कि बड़े बड़े देवता और ऋषि महर्षि भी इस व्यभिचारसे नहीं बचे थे!

जो हो, परन्तु इस कलियुगमें लोगोंने इस विषयमें बहुत कुछ सुधारणा कर ली है। पाश्चात्य देशोंमें छोटेसे छोटे गरीबसे लेकर बड़ेसे बड़े चक्रवर्ती सम्राट् तक एकाधिक स्त्री नहीं रख सकते हैं। इन्हीं जड़वादी पाश्चात्योंके संसर्गसे कहिए अथवा समयके फेरसे कहिए, भारतके बड़े बड़े सेठ साहूकार और जमीनदार लोग भी अब एक ही एक स्त्रीपर संतोष करने लगे हैं और जो एकाधिक स्त्रियाँ विवाहते हैं वे निन्दाके पात्र बनते हैं। यद्यपि भारतके राजा महाराजा प्राचीन धर्मयुगकी देखादेखी अब भी कई कई विवाह करते हैं और वेश्यायें भी रखते हैं, परन्तु वे पहलेके मुकाबलेमें बहुत थोड़ी होती हैं, और धीरे धीरे उनकी गिनती कम होती जाती है। बल्कि कोई कोई राजा भी अब एकाधिक विवाह करना और वेश्याओंका रखना बुरा समझने लगे हैं। जो राजा महाराजा एकाधिक विवाह करते हैं वे भी पहलेके समान चढ़ाई करके नहीं, किन्तु राजीखुशीसे करते हैं। इस तरह अब काम-

---

* जैनधर्मके पुराणोंके अनुसार चक्रवर्ती राजाकी रानियोंकी संख्या ९६००० होती थी और उनमें ३२००० म्लेच्छकन्यायें होती थीं!

वासनाकी प्रबलताके कारण पहलेके समान न तो खून-खराबा ही होता है और न अशांति ही फैलती है, परंतु कुछ दूसरे कारणोंसे अब भी लोगोंकी कामतृष्णा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इस लिए आज भी सब लोग इसके फंदेमें वैसे ही फँसे हुए हैं जैसे कि पहले फँसे थे और अधिक विषय-भोग, वेश्यागमन, परस्त्री-सेवन, हस्तमैथुन, बच्चेबाज़ी आदि अनेक बुरी लतोंके द्वारा अपनेको बरबाद कर रहे हैं। भारतवर्षके लोग जब तक इन बुरी लतोंको छोड़कर अपने ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा नहीं करेंगे, तबतक न तो वे पुरुषार्थी ही बन सकते हैं और न उन्नतिके क्षेत्रमें आगे ही बढ़ सकते हैं। इन बुरी लतोंके कारण वे अपनी विद्याबुद्धि और शारिरिक शक्तिको खोकर दिन पर दिन पतित होते जाते हैं। ऐसी हालतमें सिवा रोने-धोने और दूसरोंकी शिकायत करनेके और वे कर ही क्या सकते हैं ?

कामवासनाकी इन बुरी लतोंसे पीछा छुड़ानेके लिए हमारी समझके अनुसार भारतवासियोंको निम्नलिखित उपाय करने चाहिए। जब तक इस बढ़ती हुई कामवासनाकी लपटको रोकनेका उपाय न किया जायगा—जब तक ब्रह्मचर्य्य और वीर्य्यकी रक्षा न की जायगी तब तक यह भारतवर्ष अन्य उपायोंसे कभी नहीं पनप पायगा।

(१) प्राचीन समयमें कन्याओंके जवान होने पर उनके रूपलावण्य और यौवनको देखकर बलवान् पुरुष उनकी प्राप्तिके लिए लड़ाई दंगे किया करते थे। इस लिए लोगोंने इन झगड़ोंसे बचनेके लिए बिलकुल छोटी उम्रमें अपनी कन्याओंका विवाह करना शुरू कर दिया। अब यह प्रथा इतनी लोकरूढ़ और दृढ़ हो गई है कि इसके अनुमोदनमें अनेक धार्मिक आज्ञायें तक प्रचलित हो गई हैं। यही कारण है कि यहाँ पर यह प्रथा अब तक चली जा रही है। इस बाल्यविवाहकी प्रथाके कारण लोगोंका बल-वीर्य्य घट गया है, सब उत्साह और इरादे हवा हो गये हैं, विचारशक्ति मंद पड़ गई है, जीवनशक्ति

नष्ट हो गई है और सब तरहकी उन्नतिका क्रम रुक गया है। छोटी उम्रमें शादी होने और बल-वीर्य्यके घट जानेसे प्रायः सभी स्त्रीपुरुषोंमें प्रदर और प्रेमह आदिकी बीमारियाँ फैल गई हैं। इसी शारीरिक और वीर्यसम्बन्धी निर्बलताके कारण विषयेच्छा बढ़ती जा रही है और वह अनेक निंद्य रीतियोंके द्वारा पूर्ण की जाती है। इन्हीं सब कारणोंसे आजकलकी सन्तान भी अत्यन्त निर्बल और पुरुषार्थहीन उत्पन्न होने लगी है। कहनेका मतलब यह है कि बाल्यविवाह ही इन सब अनर्थोंकी जड़ है—जिसका दूर करना बहुत लाज़मी और ज़रूरी है।

(२) पाश्चात्य देशोंमें व्यभिचारका दोष स्त्री-पुरुष दोनोंको समान रूपसे लगता है और व्यभिचारी पुरुष वैसा ही निंद्य समझा जाता है जैसी कि व्यभिचारिणी स्त्री। इस लिए वहाँ स्त्री भी अपने पतिपर उसी तरह व्यभिचारका दोष लगा सकती है जिस प्रकार पुरुष अपनी स्त्रीपर लगाते हैं। परन्तु इस परम पावन भारतवर्षके ऋषि महर्षियोंने अपने दिव्यज्ञानसे यह एक परम अद्भुत आविष्कार किया है कि पुरुष तो हजारों स्त्रियोंसे विवाह करके, शूद्रों तथा म्लेच्छोंकी कन्याओं और स्त्रियोंतकको घरमें डालकर, पराई स्त्रियोंको छीन कर, खुल्लमखुल्ला व्यभिचारी और वेश्यागामी होकर भी दोषी नहीं होता है, मोक्षप्राप्तिका पात्र बना रहता है; परन्तु स्त्रियाँ एकके सिवा दूसरा पति नहीं कर सकती हैं। वे अपने ऐसे पतिकी भी भक्त बनी रहनेके लिए बाध्य हैं जो उक्त सब दोषोंसे परिपूर्ण होकर उसका नाम भी न लेता हो और वेश्याओं तथा परस्त्रियोंसे अनुरक्त रहता हो। यही नहीं, उन्हें चाहिए कि वे ऐसे कुकर्मी पतिके मरने पर भी उसके साथ जीतेजी जल मरें या उसके नामपर धूनी रमाकर जन्म भर रँड़ापा काटें। ऐसी सहनशील स्त्रीजाति उक्त महर्षियोंकी दृष्टिसे अत्यन्त पतित और मोक्षकी अनधिकारिणी है।

उन्हें इतने पर भी संतोष नहीं हुआ, उन्होंने यहाँतक लिख दिया है कि 'स्त्रीचरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' अर्थात् स्त्रीके चरित्र और पुरुषके भाग्यको देवता भी नहीं जान सकते हैं, फिर मनुष्योंकी तो मज़ाल ही क्या है ।

यही कारण है कि आजकल भी इस देशके उच्च जातीय मोक्ष-गामी पुरुष यद्यपि पहलेके समान शूद्र तथा म्लेच्छोंकी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं डालते हैं, परन्तु राह चलती चमारियोंको छेड़कर और उनसे माँ-बहिनोंकी गंदी गालियाँ सुनकर भी उच्च ही बने रहते हैं और नीच जातीय वेश्याओंके साथ खुल्लमखुल्ला व्यभिचार करके भी दोषी नहीं होते हैं । वे अपनी पतिव्रता स्त्रीका सारा गहना उतार उतार कर वेश्याओंको अर्पण कर आते हैं और इतने पर भी त्रिया-चरित्रकी कथायें सुना सुना कर उसके प्रति अपनी घृणा प्रकट करते हैं । इस विषयमें एक तमाशा यह है कि ये पुरुष परमव्यभि-चारिणी स्त्रियों अर्थात् वेश्याओंको बिलकुल दोषी नहीं समझते हैं । वे उन्हें द्रव्यादि देकर अपने मांगलिक कामोंमें बुलाते और छोटे बड़ों, बूढ़े स्यानों, बिरादरीके मुखियाओं, गुरुजनों, धर्मात्माओं और पंडि-तोंको इकट्ठा करके उनके मुंहसे व्यभिचारका उपदेश सुनवाते हैं । व्यभिचारकी अग्निको पूर्णरूपसे प्रज्वलित करनेके लिए इस वैश्या-नृत्यके सिवा और दूसरा कोई उत्तम साधन नहीं है । इसी तरह अनेक मनुष्य ब्याह-शादियों, मेलों-ठेलोंऔर तीर्थस्थानोंमें पराई स्त्रियोंको घूरने और उनकी चर्चा करनेमें कुछ भी बुराई नहीं समझते हैं, बल्कि उनको अपने काबूमें लाने और उन्हें व्यभिचारिणी बनानेके लिए तरह तरहके प्रयत्न करते हैं । इस तरह जो स्त्रियाँ उनके काबूमें आ जाती हैं उनकी वे बहुत कदर करते हैं और उनपर आपनी जान-माल निछावर करनेको तैयार हो जाते हैं । हाँ, अपने घरकी स्त्रियोंका बेशक किसीको पल्ला भी नहीं दिखाया चाहते हैं और इसीलिए

उनपर बहुत कड़ा पहरा रखते हैं। उनके इस व्यवहारका यह मतलब निकलता है कि पुरुषजाति व्यभिचारको बिलकुल बुरा तो नहीं समझती है, परन्तु स्वार्थवश वह इतना अवश्य चाहती है कि हमारी स्त्रियाँ हमारे ही काम आवें। अर्थात् वे चोरोंकी तरह चोरीको तो बुरा नहीं समझते हैं, परन्तु यह जरूर चाहते हैं कि हम तो सबका माल चुरावें परन्तु हमारा कोई न चुरावे।

पाठकगण समझ गये होंगे कि इस आपापोखीपनसे कैसी गड़बड़ी मचती है, कैसी अशान्ति फैलती है, व्यभिचारकी कितनी वृद्धि होती है और पारस्परिक बुराई फैलकर मनुष्य जातिके सुप्रबन्धमें कितना धक्का लगता है। अतएव मनुष्यजातिकी सुखशान्ति और उन्नतिके लिए यह जरूरी है कि अपनी एक विवाहिता स्त्रीके सिवा अन्य किसी स्त्रीकी ओर कुदृष्टिसे देखने या उससे अनुचित सम्बन्ध रखने पर पुरुष भी उतना ही दोषी समझा जाय जितनी कि स्त्री समझी जाती है और वेश्यानृत्य करानेमें पुरुषजातिपर उतना ही लांछन लगाया जाय जितना कि उस स्त्रीपर लगाया जा सकता है जो स्त्रियोंकी सभा जोड़कर उसमें किसी महाव्यभिचारी पुरुषको नचावे और उससे व्यभिचारके गीत गवाकर आनंद मनावे।

(३) एक पुरुषकी अनेक स्त्रियाँ होनेसे वह न तो सब पर सच्ची प्रीति ही रख सकता है और न सबको अपना हृदय ही दे सकता है। क्योंकि अगर वह ऐसा करना भी चाहे तो एक दिलके टुकड़े नहीं किये जा सकते हैं। वास्तवमें वह अपनी पाशविक लालसाको पूर्ण करनेके लिए बाहरसे तो सब पर बनावटी प्रीति दिखलाता है परन्तु सच्ची प्रीति एक पर भी नहीं रखता है। इसी तरह उसकी स्त्रियाँ भी उसपर बाह्य प्रेम रखती हैं। चाहे वे लोकलज्जाके कारण उसके मरनेपर उसकी लाशके साथ सती भले ही हो जायँ, परन्तु उस पर उनकी सच्ची प्रीति होना एक तरहसे असंभव ही

है। इसी लिए यह पुरानी कहावत प्रसिद्ध है कि ' त्रियाचरित जाने नहिं कोई, खसम मारकर सत्ती होई।' इसके सिवा एक पुरुष अनेक स्त्रियोंकी कामतृष्णाको पूर्ण भी नहीं कर सकता है। इसी लिए प्राचीन समयमें जब एक एक पुरुष सैकड़ों–हजारों स्त्रियाँ रखता था, तब उन स्त्रियोंको अनेक कुकर्म करने पड़ते थे और अनेक मायाचार रचने पड़ते थे। ऐसी हालतमें नौकर चाकर, ऊँच नीच जो कोई मिल जाता था उन्हींके द्वारा वे अपनी कामाग्नि शान्त किया करती थीं। यही कारण है कि उस समयके लेखकोंने स्त्रीजतिको यहाँतक बदनाम किया है कि व्यभिचार, मायाचार और नीच पुरुषोंसे स्नेह करना उनका स्वाभाविक धर्म ठहरा दिया है।

इन सब बातोंके अतिरिक्त एक पुरुषकी अनेक स्त्रियाँ होनेसे उनमें कलह और मनमुटाव भी बहुत ज्यादह रहता है और उनकी सौतेली संतान तो प्रायः लड़लड़कर ही मरती है। इसलिए एक पुरुषकी अनेक स्त्रियाँ होना अनुचित है। जिस प्रकार स्त्रीको एक पतिके सिवा स्वप्नमें भी दूसरे पुरुषको खयालमें लानेका अधिकार नहीं है, उसी प्रकार पुरुषको भी एक स्त्रीके सिवा दूसरी स्त्रीका खयाल दिलमें लानेका अधिकार न होना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्योंने इस विषयमें पहलेकी अपेक्षा बहुत उन्नति कर ली है और अब बहुधा एक एक स्त्री रखना ही पसंद किया जाने लगा है; परन्तु अब भी इतनी कसर अवश्य बाकी है कि जिस प्रकार एक स्त्री दो पति रखनेका खयाल करनेसे ही महान् पापिनी समझी जाती है उसी प्रकार पुरुष दोषी नहीं समझा जाता है। यही कारण है कि आजकल भी अनेक पुरुष एकाधिक स्त्रियोंसे विवाह कर लेते हैं और इस प्रकार वे एकपत्नीव्रतको भंग करते हैं। अतएव स्त्रियोंके समान पुरुषोंके लिए भी ऐसा ही कड़ा नियम बनानेकी आवश्यकता है, जिससे वे एकाधिक स्त्री न रख सकें और एकपत्नी-

व्रतको निबाहें । इसीसे दाम्पत्यप्रेमकी उन्नति हो सकती है और सामाजिक शान्ति बढ़ सकती है ।

(४) भारतवर्षकी उच्च जातियोंने अपनी जबरदस्तीसे यह उलटी और एकपक्षी रीति जारी कर रक्खी है कि पुरुष चाहे सैकड़ों विवाह कर ले, एक अथवा अधिक स्त्रियोंके मौजूद रहने पर भी नित्य नई नई स्त्रियोंको ला लाकर घर भरे, परन्तु स्त्री अपने पतिके मर जानेपर भी दूसरा पति न करने पावे। इसका भयंकर परिणाम यह हुआ है कि देशमें लाखों-करोड़ों विधवायें हो गई हैं, जिनमेंसे अधिकांश ऐसी हैं कि वे पूर्णरूपसे अपने ब्रह्मचर्य्यका पालन नहीं कर सकती हैं । इस लिए वे स्वयं व्यभिचारिणी बनती हैं और पुरुषोंको व्यभिचारी बनाती हैं । इस तरह व्यभिचारकी खूब वृद्धि होती है। विधवाओंकी देखादेखी सधवायें भी व्यभिचारिणी बन जाती हैं और अनेक अनर्थोंका कारण बनती हैं । इसके सिवा जब इन विधवाओंके गर्भ रह जाते हैं तब वे लोक-लाजके कारण गर्भपात करके भ्रूणहत्या जैसे भयंकर पाप करती हैं । ऐसे ऐसे दुष्कृत्य करनेसे उनका हृदय महान् कठोर बन जाता है जिससे वे और भी ऐसे अनेक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाती हैं । किसी विधवाके गर्भ रह जाने पर उसके घरके सब आदमी इस बदनामीसे बचनेके लिए गर्भ गिरानेमें उसे सहायता पहुँचाते हैं । अतः जिस विधवाको एक बार गर्भ गिरानेका अवसर मिल जाता है या जिसकी एक बार कुछ बदनामी फैल जाती है वह खुल्लमखुल्ला व्यभिचारिणी बन जाती है । उसकी देखादेखी घरकी अन्य स्त्रियाँ भी ऐसा साहस करने लगती हैं और कुमार्गकी ओर कदम बढ़ाती हैं । ऐसा होनेसे घरका सब प्रबन्ध बिगड़ जाता है और खराबी होने लगती है ।

विधवाओंका दूसरा विवाह न होनेके कारण एक और बड़ी खराबी होती है । संसारमें स्त्रीपुरुष प्रायः समान संख्यामें उत्पन्न

हुआ करते हैं, अर्थात् कुंवारी लड़कियाँ भी उतनी ही होती हैं जितने कि कुंवारे लड़के। अगर ये सब कंवारी कन्यायें कुंवारे लड़कोंको ब्याह दी जायँ तो रँडुए खाली रह जाते हैं और वे विधवाओंको व्यभिचारिणी बनानेके लिए बड़ी बड़ी कोशिशें करते हैं। यदि कोई विधवा हाथ नहीं आती है तो वे सधवाओंको ही बहकाते हैं और इस प्रकार अनेक प्रकारके उत्पात मचाते हैं। यदि वे कुंवारी कन्यायें इन रँडुओंको ब्याह दी जाती हैं तो उतने ही कुंवारे लड़के सदाके लिए बिना व्याहे रह जाते हैं और वे भी जबान होकर इसी प्रकार खराबी करते हैं। रँडुओंका विवाह हो जानेकी हालतमें एक खराबी यह होती है कि रँडुए तो बड़ी उम्रके होते हैं और उनके साथ ब्याही जानेवाली कुंवारी कन्यायें बहुत छोटी उम्रकी होती हैं, इस कारण उनका जोड़ा ठीक नहीं मिलता है और ऐसे अनमेल विवाहसे सुफल फलनेकी आशा बहुत कम रहती है। बुड्ढोंकी नव-विवाहिता स्त्रियाँ उनकी पोतियोंके बराबर होती हैं। भला ऐसे पितृतुल्य पतिराज पर उनकी प्रीति कैसे हो सकती है और किस प्रकार वे अपने धर्म्मको निभा सकती हैं। मतलब यह है कि विधवाओंका विवाह न होनेसे बहुत अव्यवस्था हो गई है, मनुष्य-जातिके सुख-शांतिके अनेक नियम टूट गये हैं और इस प्रकार अशान्तिका विस्तार होकर सारा कारबार तितर-वितर हो गया है।

इन सब बुराइयोंको दूर करने और व्यभिचारको रोकनेके लिए विधवा-विवाहका जारी होना बहुत जरूरी है। ऐसा होनेसे रँडुए और कुंवारे सभी अपनी अपनी योग्यताकी विधवाओंसे विवाह कर सकेंगे—कोई अनव्याहा न रहने पावेगा और सब स्त्रीपुरुष अपनी अपनी राह चलकर संसारकी सुखशांति बढ़ावेंगे। यदि किसी धार्मिक आज्ञाके कारण ये सब बुराइयाँ सहना ही मंजूर हों तो वही धार्मिक आज्ञा पुरुषों पर भी चलानी चाहिए, अर्थात् स्त्रियोंकी तरह उनका भी

दुबारा विवाह होना पापजनक ठहराकर बंद कर देना चाहिए। इससे कमसे कम इतना फायदा तो अवश्य होगा कि कुंवारी कन्यायें रँडुओंको न ब्याही जाकर कुंवारोंको ही ब्याही जाया करेंगी, बूढ़े बाबा भी अपनी पोतियोंके समान छोटी छोटी छोकरियोंको ब्याह कर उच्च जातिके मुंहमें कालिमा न पोत सकेंगे और न विवाहके दूसरे दिन ही बुड्ढे बाबाकी अर्थी निकल कर उसकी नई दुलहिन सदाके लिए विधवा ही बना करेंगी।



८—पारस्परिक सहायता।

पहले कई अध्यायोंमें हम यह बतला चुके हैं कि मनुष्यका जीवन-निर्वाह परस्परके व्यवहारसे ही होता है और जितनी उत्तम रीतिसे यह पारस्परिक व्यवहार चलाया जाता है उतना ही मनुष्यका जीवन सुखमय बनता है। अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि यह व्यवहार किस तरह किया जाना चाहिए कि जिससे हमारा जीवन सुखमय हो जावे। इसमें सबसे पहली बात समझनेके योग्य यह है कि परस्परका व्यवहार तो साधारण रीतिसे ऐसा ही होता है कि जो कुछ हम किसीको दें उसका पूरा बदला ले लें। जैसे कि एक पैसा देकर एक पैसे मूल्यकी चीज़ ले लेना, या किसीका एक पैसेका काम करके उससे एक पैसा नकद ले लेना, अथवा जितना किसीका काम किया जाय उतना ही उससे करा लेना। परन्तु मनुष्यका जीवन-निर्वाह केवल ऐसी ही तौल-जोखकी अदला-बदलीसे नहीं चल सकता है, वरन् उसको बहुतसी बातोंमें अपना परस्परका व्यवहार ऐसा रखना पड़ता है कि जिसमें पूरे बावन तोले पाव रत्तीके बदलेका ख्याल हर्गिज़ नहीं हो सकता है, बल्कि उसे केवल यही ख्याल रखना पड़ता है कि जब जब जरूरत पड़े तब तब वह उसके काम आ जाय। जैसे कि जब एक घरमें इकट्ठे रहनेवाले पति-पत्नी या दो भाइयोंमेंसे एक बीमार हो जाता है तब दूसरा उसकी दवा-दारू और सेवा-शुश्रूषा करता है और ऐसी परस्परकी सहायतासे उस कुटुम्बका जीवन-निर्वाह होता है। इस प्रकारकी पारस्परिक सहायतामें पूरे पूरे बदलेकी बात कभी नहीं निभ सकती है। क्यों कि अगर घरके चार आदमियोंमेंसे सबसे पहले एक आदमी बीमार हो जाय और उस समय घरके तीनों आदमी यह सोचने लगें कि हमको तो कभी

बीमार पड़कर इससे सेवा-शुश्रूषा करानेकी जरूरत नहीं पड़ी है, फिर हमीं क्यों इसकी सेवा-शुश्रूषा करें, तो ऐसी स्थितिमें बेचारे उस बीमार पर बुरी बीतेगी। इसी प्रकार जब कभी उन तीनोंमेंसे कोई बीमार होगा तो वह भी अलग पड़ा पड़ा दुःख भोगेगा और कोई उसके पास न जायगा। सारांश, इस प्रकार कभी न कभी सबको दुःख उठाना पड़ेगा।

इसके सिवा यदि इन चारोंमेंसे एकको बीमारी बारंबार सताती है और बाकी तीनोंको कभी कभी इत्तफाकसे ही हुआ करती है तो पूरा पूरा बदला चुकानेकी सूरतमें तो वे तीनों आदमी उसकी सेवा-शुश्रूषा यदा कदा ही किया करेंगे, बारंबार हर्गिज न करेंगे। यदि किसी कारणसे ये तीनों भी बारंबार बीमार होने लगें तो वह चौथा भी उनकी बारंबार सेवा न करेगा, बल्कि जितनी बार उन्होंने इसकी सेवा की होगी उतनी ही बार यह भी उनकी कर देगा और बाकी समय वे भी यों ही पड़े पड़े सड़ेंगे। इसके सिवा किसीको किसी प्रकारकी बीमारी होती है और किसीको किसी तरहकी। कोई तो एक प्रकारकी सेवा चाहता है और कोई दूसरे प्रकारकी। तब पूरे पूरे बदलेका खयाल रखनेकी हालतमें एक आदमी उसकी वैसी ही सेवा करनेको तैयार होगा जैसी कि उसने उसके द्वारा कराई होगी। परन्तु दूसरेको वैसी ही सेवाकी जरूरत नहीं पड़ती, इस लिए कोई किसीके काम न आ सकेगा और पशुओंकी तरह सबको अलग अलग दुःख उठाना पड़ेगा। अतएव मनुष्योंको अपनी सुख-शांतिके लिए पारस्परिक सहायताका यही नियम चलाना चाहिए और इसीसे उनका जीवन-निर्वाह हो सकता है कि एकके बीमार पड़नेपर घरके सभी आदमी उसकी सेवा-शुश्रूषा करें, उसके काम आवें, और मनमें बदले-बदलेका कुछ भी खयाल न लाकर जरूरतके अनुसार उसकी टहल करें। आपसमें ऐसा उदार व्यवहार करनेसे ही घरके सब

आदमियोंको पूरा पूरा आराम मिल सकता है और उनकी बहुतसी तकलीफें रफा हो सकती हैं।

एक घरमें इकट्ठे रहनेवाले लोगोंके सिवा हमें अपने मित्रों, पुरा-पड़ोसियों, जाति-बिरादरीवालों, नगरनिवासियों और मनुष्यमात्रके साथ इसी प्रकारकी उदारताका व्यवहार जारी करके अपने सुख-साधनोंको और भी विस्तृत करना चाहिए। यद्यपि इस प्रकारकी सहायता परोपकार कहलाती है, परन्तु वास्तवमें तो इससे अपनी ही सहायताके अनेक द्वार खुल जाते हैं और भारी भारी संकट बातकी बातमें दूर हो जाते हैं। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि किसीके घर चोर अथवा डाकुओंके आने पर यदि पुरा पड़ौसवाले आकर उसकी रक्षा न करें तो ऐसी दशामें चोर एक एक करके सभीका घर लूट ले जाया करें और जो घरवाला जरा भी चूं-चपड़ करे तो वह जानसे मारा जाय। इस तरह परस्पर एक दूसरेकी सहायता तथा रक्षा न करनेसे सारा नगर ही विपत्तिमें फँसा रहे और उसमें कभी सुख-शांति स्थापित न हो सके। परन्तु किसीके घर चोर आते ही जब सब नगरनिवासी दौड़कर वहाँ पहुँचते हैं और उसके जान-मालकी रक्षा करते हैं, तब उस नगरमें जाकर चोरी करनेकी हिम्मत चोरोंको नहीं पड़ती है और सभी नगरनिवासी बेफिकर होकर आनन्दसे सोते हैं।

यद्यपि इस प्रकार किसी एकके घर चोर आने पर अन्य पुरुषोंका उसकी रक्षाके लिए आना परोपकार कहलाता है; परन्तु वास्तवमें इससे अपना ही उपकार होता है। क्यों कि ऐसे परोपकार करते रहनेसे हम सब अपने अपने घर बेफिकरीसे सोते हैं और इस बातका भरोसा रखते हैं कि यदि हमारे घर पर चोर आजावेंगे तो सब आदमी हमारी रक्षाके लिए दौड़े आवेंगे और जिस तरह हो सकेगा हमारे जान-मालकी रक्षा करेंगे। यद्यपि इस व्यवहारमें